UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180431
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 R94A Accession No. 1692

Author रूपनारायण.

Title अरस्तूपारिया.

This book should be returned on or before the date last marked below.

सरस्वती-सिरीज़ नं० ६५

अरक्षणीया

रूपनारायण पांडेय

सर्वोदय साहित्य [illegible]
हुसेनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

H83
R94A

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्रकुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित त्रैलोक्येश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायबहादुर पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर डा० श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, प० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

आधुनिक उपन्यास

अरक्षणीया

स्वर्गीय शरत् बाबू के इसी नाम के उपन्यास का
हिन्दी रूपान्तर।

रूपनारायण पांडेय

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad

१

"मँझली मौसी, लो, अम्मा ने यह महाप्रसाद भेजा है।"

"कौन, अतुल ? आओ भैया, आओ" कहती हुई दुर्गा देवी चौके से बाहर निकल आईं। अतुल ने उनके पैर छूकर प्रणाम किया।

दुर्गा ने कहा—अच्छे रहो बेटा, बड़ी उमर हो।—अरे ओ ज्ञानदा, देख तेरे अतुल दादा आये हैं। इन्हें बैठने के लिए कुछ आसन तो दे। और, यह महाप्रसाद उठाकर रख दे बेटी। कल रात को साढ़े नव-दस बजे सड़क पर घोड़ा-गाड़ी आने की आहट पाकर मैंने सोचा, कौन आया। उस समय अगर जानती कि बहन आई हैं, तो उसी समय दौड़ी जाकर उनके पैर छू आती। ऐसे आदमी भी कहीं दुनिया में देख पड़ते हैं, जैसी मेरी दीदी हैं। दीदी अच्छी हैं न बेटा ? अभी जगन्नाथपुरी से शायद तुम लोग आ रहे हो ?—क्या करती हो बिटिया, तुम्हारे अतुल दादा तब से खड़े हुए हैं।

माता के बुलाने से एक १२-१३ वर्ष की साँवले रङ्ग की लड़की हाथ में बिछाने के लिए एक आसन लिये भीतर से निकल आई। जहाँ तक हो सकता है, गरदन झुकाकर उसने दालान में आसन बिछा दिया, और फिर अतुल के पैरों के पास आकर प्रणाम किया। उसने न तो मुँह से कोई शब्द ही कहा, और न अतुल की ओर आँख उठाकर देखा ही। प्रणाम करके वह उठी, और महाप्रसाद का पात्र उठाकर धीरे-धीरे भीतर चली गई। किन्तु ज़रा अच्छी तरह देखने से देख पड़ता कि जाते समय उस लड़की के मुख और आँखों से मानो दबी हुई हँसी उमड़ी पड़ती थी।

केवल उस लड़की का ही यह हाल न था, इधर भी ज़रा ग़ौर करने से देख पड़ता कि उस सुन्दर सुदर्शन लड़के (अतुल) के मुख पर भी एक अदृश्य बिजली की झलक झलक गई, और उसका मुख-मण्डल उज्ज्वल हो उठा।

अतुल उस आसन पर बैठकर तीर्थ के प्रवास की बातें करने लगा। उसके पिता पुराने ज़माने के 'सदर-आला' थे। बहुत सी नक़दी और ज़मीन-जायदाद जमा करके, पेंशन लेकर, घर में बैठे भगवद्भजन करते थे। चार साल हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। बी० ए० की परीक्षा देकर अतुल दो महीने पहले माता को साथ लेकर तीर्थ-यात्रा करने गया था। हाल में रामेश्वर से पुरी होता हुआ अपने गाँव को लौट आया है।

बातचीत सुनकर दुर्गा ने एक साँस छोड़ी और कहा—और मैं ऐसी महापापिन हूँ कि और कुछ होना तो दूर, एक बार बाबा विश्वनाथ के चरणों ही के दर्शन कर आने की साध भी इस जन्म में पूरी न हो पाई।

अतुल ने कहा—मँझली मौसी, काशी हो चाहे कहीं और हो, एक बार सब छोड़-छाड़कर ज़बर्दस्ती घर से निकल पड़े बिना कहीं जाना नहीं हो सकता। मैं इस तरह ज़बर्दस्ती करके अगर न ले जाता तो क्या मेरी माँ का कहीं जाना होता?

दुर्गा ने और एक साँस छोड़कर कहा—जानते तो हो सब बेटा। ज़ोर-ज़बर्दस्ती काहे पर करूँ? तीस रुपये महीने की उनकी नौकरी ठहरी। उसी में खाना-पीना, लेना-देना, इष्ट-कुटुम्ब का सत्कार करना, डाक्टर-वैद्य का खर्च वग़ैरह सब कुछ करना पड़ता है। पास पैसा बचता ही कहाँ है, जो खर्च करके तीर्थयात्रा की जाय? उस पर लड़की का तेरहवाँ साल शुरू है—ब्याह करने की चिन्ता सिर पर सवार है! मैं सच कहती हूँ अतुल, उन (पति) के चिन्तित चेहरे की ओर नज़र पड़ते ही मेरे कलेजे का ख़ून परियों सूख जाता है। ओः! इतने बड़े शत्रु (लड़की) को भी अपने गर्भ में रखने और खिला-पिलाकर बड़ा करने की झखमारी माता को करनी पड़ती है!

दुर्गा की आँखों में आँसू भर आये।

किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इतनी बड़ी दुश्चिन्ता और करुण कातर वाणी का कुछ भी ख़याल न करके अतुल उलटे

हँसकर कहने लगा—मौसी, तुम्हारी सभी बातें निराली होती हैं! अच्छा, लड़की क्या किसी और के नहीं होती? सिर्फ़ तुम्हारे ही क्या ब्याहने लायक़ लड़की मौजूद है? क्या ससार भर की चिन्ता एक तुम्हीं को है मौसी?

दुर्गा ने कहा—मेरे लिए यही निरी चिन्ता नहीं है अतुल, हम लोगों के लिए तो यह मृत्यु की यन्त्रणा से भी बढ़कर है! मैं अपने समाज की निष्ठुरता या धींगाधींगी ख़ूब जानती हूँ। लड़की का ब्याह न करें, तो बिरादरी से अलग कर दिये जायँ। लेकिन ब्याह करें किस तरह? उसके लिए रुपये चाहिएँ। रुपये कहाँ पावें? इस घर में सिर्फ़ एक हिस्सा है; इसके सिवा और कुछ अपनी जायदाद भी तो नहीं है भैया।

आध घण्टा पहले इसी लड़की के ब्याह के लिए स्वामी और स्त्री में झौंड़ हो चुकी थी। आधे पेट खाकर ही सामने से थाली खिसकाकर स्वामी दफ़्तर चल दिये थे। दुर्गा की उसी चोट में फिर चोट पहुँची। दो बड़े-बड़े आँसू गालों से बहकर गोद में टप्-टप् टपक पड़े। हाथ से आँखें पोंछती हुई दुर्गा बोलीं—दूसरे जन्म में मैंने न-जाने कितनी स्त्री-हत्या, बाल-हत्या की हैं अतुल, जिससे इस जन्म में मेरे पेट से लड़की पैदा हुई!

अतुल यह कहता हुआ उठने लगा—तुम न मानोगी मँझली मौसी। लो, मैं जाता हूँ, तुम यों चुप न होगी; जो मुँह में आवेगा, बकती चली जाओगी!

दुर्गा ने और एक दफ़े आँसू पोंछकर कहा—ना भैया, ज़रा बैठ जाओ, जाओ नहीं। दो घड़ी तुम्हारे आगे रो लेने से भी छाती हलकी हो जाती है। मैं कहती हूँ, भगवान् ने इस अभागिन को अगर मेरी ही गोद में भेजा था, तो उसका तनिक रङ्ग गोरा करके क्यों नहीं भेजा? काली-कलूटी होने के कारण कोई उसे ग्रहण करना ही नहीं चाहता! सभी सुन्दर लड़की ढूँढ़ते हैं। अरे जले समाज अगर तू कुछ भी नहीं देखता, कुल-शील-स्वभाव-चरित्र वग़ैरह किसी गुण की परवा नहीं करता, केवल रङ्ग काला होने से ही तू लड़की को दुरदुरा देता है, तो फिर उस लड़की का ब्याह न होने के लिए उसके माता-पिता को दण्ड देने का तुझे क्या अधिकार है?

अतुल ने कहा—काली लड़की का क्या ब्याह ही नहीं होता? भौंरे का रङ्ग काला है, कोयल भी काली होती है, तो क्या उनका आदर नहीं होता, चाह नहीं होती? ये सब तो चिरकाल के दृष्टान्त हैं मँझली मौसी!

दुर्गा ने कहा—हाँ, ये दृष्टान्त ही ख़ाली चिरजीवी होकर मौजूद हैं भैया, काम के समय इनसे कुछ भी मतलब नहीं निकलता। सिर्फ़ ज़बानी बातों से न मुझे सान्त्वना ही मिलती है, न हिम्मत ही बँधती है। भैया अतुल, गिरिश भट्टाचार्य की लड़की का ब्याह आँखों के आगे देखकर मेरे तो हवास जाते रहे। बेचारे ब्राह्मण की हमारी ही जैसी दशा थी—उसके न रुपयों का ज़ोर था, न लड़की ही रूपवती

थी। इसी से जमाई भी जुड़ा साठ साल के लगभग उमर-वाला। उस लड़की की माँ का रोना-बिलखना अभी तक मुझे नहीं भूला।

अतुल ने अचरज के साथ पूछा—साठ साल के लग-भग! कहती क्या हो मौसी?

दुर्गा—साठ के लगभग क्यों न होगा भैया। हरि चक्रवर्ती का नतदमाद वही उस टोले का निताई चटर्जी तो है। उसकी एक आठ-दस साल की लड़की भी है। हिसाब लगाकर देख न लो।

यह खबर सुनकर अतुल सन्नाटे में आ गया।

दुर्गा कहने लगीं—वह लड़की अगर ग्लानि के मारे ज़हर खा ले, गले में फाँसी लगा ले, या कुल को कलङ्क लगाकर निकल खड़ी हो, तो माता का हृदय रखकर मैं उसे किस कलेजे से शाप दूँ, भला तुम्हीं बताओ भैया?

अतुल चुप रहा। दुर्गा ने एकाएक उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—बेटा अतुल, सब लोग कहते हैं, आजकल सबके मुँह से यही सुन पड़ता है कि तुम सब नये लड़कों के भीतर दया-धर्म का भाव है। बेटा, तुम देखना भला, तुम लोगों के स्कूल-कॉलेज का कोई लड़का सिर्फ़ दया करके ही कहीं इस लड़की को अपने चरणों में थोड़ी सी जगह देने को तैयार हो जाय। ऐसा हो जाय, तो मैं मरते समय तक तुम लोगों के निकट बेदाम की लौंडी बनी रहूँगी।

अतुल ने जल्दी से अपने हाथ छुड़ाकर दुर्गा के पैरों की रज अपने माथे में लगाते हुए गद्गद कण्ठ से कहना शुरू किया—इतना घबराती क्यों हो मँझली मौसी? मैं वचन देता हूँ—

किन्तु इसके आगे वह वचन उसके मुँह से न निकल पाया। अकस्मात् लज्जा के आवेश से कनपटियों तक चेहरे में सुर्खी दौड़ गई, और कण्ठ-रोध हो गया। दुर्गा देवी तो इन बातों पर ध्यान नहीं दे सकीं, किन्तु जो और कोई वहाँ होता तो शायद उसे सन्देह होता कि अतुल, आवेग की झोंक में, कौन ऐसी बात थी, जो कहते-कहते एकाएक रुक गया।

अतुल अपने को सँभालकर उठ खड़ा हुआ। वह सहज भाव से ही बोला—अच्छा, मैं ख़ूब लगकर चेष्टा करूँगा।—कहाँ है ज्ञानदा, एक-आध पान-वान दे न, घर जाऊँ।

दुर्गा चिल्लाकर लड़की को लक्ष्य कर कहने लगीं—अरे ज्ञानदा, अपने अतुल दादा को एक पान का बीड़ा दे क्यों नहीं जाती? कलूटी लड़की के रूप तो है ही नहीं, कोई गुण भी नहीं है। मैं पूछती हूँ, ये सब आगत-सत्कार के काम भी क्या तुझे सिखाने पड़ेंगे? महाप्रसाद लेकर जब से घर में घुसी, तब से फिर बाहर ही नहीं निकली। जल्दी पान ले आ।

"अच्छा, मैं आप ही जाकर पान लिये लेता हूँ। कहाँ हो ज्ञानदा?" यों ऊँची आवाज़ में कहता हुआ अतुल सोने की दालान में पहुँच गया।

सामने पान लगाने का सामान रक्खे ज्ञानदा चुपचाप बैठी थी। अतुल ने भीतर घुसते ही गम्भीर भाव धारण करके कहा—मौसी कहती हैं, कलमुँही ज्ञानो के न है रूप, न हैं गुण। तुझे एक साठ बरस के बुढ़वा के साथ ब्याह देना होगा।

ज्ञानदा ने कुछ उत्तर न दिया, सिर झुकाये गिलौरीदान से दो बीड़े निकालकर ऊपर उठा दिये।

अतुल ने पीछे आकर हाथ से पान ले लिये और कहा—मगर देखो, पान अच्छे लगे हों तो ख़ैर, अबकी माफ़ कर दिया जायगा। साठ से घटाकर बीस-इक्कीस तक कर दिया जायगा।

लज्जा के मारे ज्ञानदा ने सिर इतना झुका लिया कि वह पानदान के ढकने से मिल गया। अतुल ने गला धीमा करके कहा—मौसी के सामने ज़रा और होता तो कह ही डाला था, और क्या!—अच्छा, देर हुई, अब जाता हूँ।

ज्ञानदा ने फिर भी कुछ बात मुँह से न निकाली। पहले की तरह अभी तक उतना ही सिर भी झुका हुआ था।

"बोलती नहीं हो? अच्छा।" कहकर अतुल ने उस लड़की के भीगे बालों में से एक लट का गुच्छा पकड़कर झिटका देते हुए कहा—लेकिन, हरि चक्रवर्ती की उमर का एक बुड्ढा आ रहा है—जाता हूँ मैं।

यह कहता हुआ अतुल वहाँ से चल दिया। किन्तु आँगन में पैर रखते ही चीख़कर कह उठा—मौसी, ज्ञानो

के लिए अम्मा बम्बई से एक जोड़ा चूड़ियाँ ख़रीद लाई हैं, बाहर आकर देखो तो सही।

"कहाँ हैं भैया ?" कहकर दुर्गादेवी फिर रसोईं से बाहर निकल आईं। अतुल ने जेब से दो चूड़ियाँ निकालकर सामने रख दीं।

उनका रङ्ग और उनके ऊपर का काम देखकर दुर्गा बहुत ही पुलकित होकर दाता की प्रशंसा करके यशोगान करने लगीं।

चूड़ियाँ थीं तो काँच की, लेकिन उस तरह की क़ीमती चूड़ियाँ देहात में क्या, उन दिनों कलकत्ते में भी न आई थीं। वास्तव में उनकी बनावट, चमक-दमक और ख़ूबसूरती देखकर अतुल, मा के नाम से, ख़ुद ही अपने पास के रुपयों से उन्हें ख़रीद लाया था।

मा के बहुत पुकारने पर ज्ञानो बाहर निकलकर आई। चुपचाप सिर झुकाये हुए स्नेह के इस प्रथम उपहार को हाथ फैलाकर लेते में उसके अञ्जलिबद्ध हाथ काँप गये! फिर दाता के पैरों के पास एक नमस्कार करके वह धीरे-धीरे वहाँ से चली गई। उसने एक भी शब्द नहीं कहा, किन्तु आज उसके हृदय की बात को अन्तर्यामी ने जान लिया। पीछे की ओर खड़े होकर केवल ये दोनों मनुष्य क्षणमात्र के लिए स्नेह-मुग्ध दृष्टि से उस किशोरी की अनिन्द्य-सुन्दर गढ़न और चाल की अदा को देखते रहे।

२

बड़े भाई गोलोकनाथ के मर जाने पर उनकी विधवा स्त्री स्वर्णमञ्जरी वंश-हीन पितृकुल की जो साधारण-सी जमीन-जायदाद थी उसे बेचकर, कुछ पूँजी पास जमा करके, छोटे देवर अनाथनाथ के ही आश्रय में आ रही थीं। मँझले भाई प्रियनाथ ने परसाल, ठीक ऐसे ही दिनों में, छोटे भाई अनाथ के साथ झगड़ा करके जब आँगन में बीचों बीच एक दीवार खड़ी कर दी, और जुदा हो गये, तब उस तमाशे को देख-देख-कर विधना अवश्य अलक्ष्य हँसी हँस रहे थे। क्योंकि एक बरस भी नहीं गुज़रा कि दीवार खिंचवाने के सारे उद्देश्य को व्यर्थ करके उस दिन वही प्रियनाथ, सात दिन बुखार में भोगने के बाद, प्रायः बिना चिकित्सा के ही मर गये।

मरने के पहले दिन जब मृत्यु के बारे में रत्ती भर सन्देह नहीं रह गया था, और वही देखने के लिए गाँव भर के लोग क़तार बाँधकर दल के दल घर में घुसकर दरवाज़े के आगे भीड़ करके खड़े-खड़े अस्पष्ट कलरव के द्वारा शोक-खेद के भाव प्रकट कर रहे थे, उस घड़ी तक प्रियनाथ की संज्ञा लुप्त नहीं हुई थी, उन्हें होश था। अतुल गाँव में मौजूद न था। कलकत्ते के एक मेस में अतुल ने यह दुःसंवाद सुन पाया। वहाँ से दौड़ता हुआ वह आज गाँव में आ पहुँचा था। भीड़ को ठेलकर जब वह रोगी की कोठरी में दाखिल होने की कोशिश कर रहा था, उसी समय न-जाने कहाँ से ज्ञानदा

पागलों की तरह आ गई, और पछाड़ खाकर अतुल के पैरों पर अपना सिर पटकने लगी। जो लोग तमाशा देखने की ग़रज़ से आये थे, वे यह अचिन्तनीय आकस्मिक घाते का तमाशा पाकर अचरज के साथ मन में तर्कना करने लगे। लेकिन अतुल का बुरा हाल हो रहा था। वह इतनी बड़ी भीड़ के सामने दुःख और लज्जा के मारे हतबुद्धि विमूढ़ बन गया।

क्षण भर के बाद जब अतुल कुछ सँभलकर ज्ञानदा को पैरों पर से उठाने लगा तब वह ज़ोर करके पैरों पर ही मुँह रखकर रोते-रोते कहने लगी—बाबूजी के मरते समय तुम अपने मुँह से उन्हें एक कुछ आश्वासन दे जाओ; मेरे भाग्य में चाहे जो बदा हो, इस समय वही करो जिसमें ये मेरी ही तरह मेरी चिन्ता को भी यहीं छोड़ जा सकें। मैं तुमसे और कुछ नहीं माँगती।

इतना कहकर ज्ञानदा फिर वैसे ही सिर पटकने और रोने लग गई।

उसका दुश्चिन्ता-ग्रस्त दुर्भाग्य पिता अत्यन्त असमय में—बिलकुल बेवक़्त—मर रहा है; आज इस घड़ी ज्ञानदा को यह सोचने का अवसर नहीं कि क्या करने योग्य है और क्या करने योग्य नहीं। इतने आदमियों के आगे आप क्या कहती हैं, और क्या करती है, यह कुछ उसने नहीं सोचा-विचारा; वह लगातार सिर पटकती रही।

किन्तु अतुल था संयमी पुरुष। ज्ञानदा के इस असंयत और असङ्गत व्यवहार के लिए हृदय के भीतर वह चाहे कितने ही क्लेश का अनुभव क्यों न करे, बाहर इतनी कौतूहल-भरी आँखों के आगे उसे कठिन हो उठना पड़ा। ज़बरन् पैर छुड़ाकर कोमल झिड़की के साथ उसने कहा—छिः, यह क्या करती हो! शान्त होओ, रोओ-धोओ नहीं। मुझे जो कहने को है वह मैं कहूँगा नहीं तो क्या?

बस, वह रोगी की खाट पर एक तरफ़ जा बैठा। दुर्गा स्वामी के सिरहाने बैठी थीं। अतुल के मुँह की ओर देखकर वे भी चुपचाप रोने लगीं।

परोसी नीलकण्ठ चटर्जी दरवाज़े पर ही खड़े थे। अतुल को देर करते देखकर बोले—देखो, प्रियनाथ को अभी थोड़ा-बहुत होश बना है भैया, जो कहना हो वह इस घड़ी ख़ूब चिल्लाकर कह डालो, तब सब उनकी समझ में आ जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वृद्ध के इस प्रस्ताव का अनुमोदन भी उसी दम अन्य दो-एक आदमियों ने कर डाला।

भीड़ देखकर अतुल पहले ही क्रुद्ध हो उठा था। उस पर इन लोगों के इस अत्यन्त अशोभन कौतूहल से वह मन ही मन आग-भभूका हो गया। उसने कहा—आप लोग व्यर्थ भीड़ लगाकर तो कुछ इनका उपकार कर न पावेंगे—आप लोग तनिक बाहर जाकर बैठिए, तो फिर मैं अपना वक्तव्य कह सकता हूँ।

नीलकण्ठ बिगड़कर बोले—व्यर्थ क्यों है जी? परोसी की विपत्ति में परोसी ही आते हैं! तुम्हीं कौन सा सार्थक उपकार करने को बिछौने के ऊपर जाकर बैठ गये हो!

अतुल ने उठकर दृढ़ स्वर में कहा—मैं उपकार करूँ या न करूँ, लेकिन आप लोगों को इस तरह हवा का आना रोककर अपकार करने न दूँगा। सब लोग बाहर जाइए।

उसका भाव देखकर नीलकण्ठ दो पग पीछे हटकर खड़े होकर बोले—अभी उस दिन की पैदाइश तुम्हारी है; कल के छोकरे हो तुम। तुम्हारी इतनी मजाल!

किसी आदमी ने वृद्ध की आड़ में खड़े-खड़े कहा—एम० ए०, बी० ए० पास कर चुका है कि नहीं!

एक दस-बारह वर्ष का लौंडा झाँक रहा था। अतुल ने किसी की बात पर ध्यान न देकर उस छोकरे को पीछे ढकेल दिया। वह जाकर दूसरे आदमी के ऊपर गिर पड़ा। जिसके ऊपर वह गिरा उसने अस्पष्ट स्वर में "डिपुटी साहब का बेटा" वग़ैरह कहते-कहते बाहर की ओर प्रस्थान किया। नीलकण्ठ वग़ैरह भले आदमी अतुल की बात सुन पाने की कोई विशेष आशा न देखकर, मन ही मन धमकी देकर, चल दिये।

जब बाहर का कोई आदमी नहीं रहा तब अतुल ने मृतप्राय रोगी के मुँह के ऊपर झुककर पुकारा—"मौसाजी!" प्रियनाथ लाल-लाल आँखें खोलकर मूढ़ या बेहोश आदमी की

तरह ताकने लगे। अतुल ने फिर ज़ोर से कहा—मुझे आपने पहचाना ? प्रियनाथ ने आँखें मूँदकर अस्पष्ट स्वर में कहा—अतुल।

अतुल—अब आप कैसे हैं ?

प्रियनाथ ने सिर हिलाकर वैसे ही अस्पष्ट स्वर में कहा—अच्छा नहीं हूँ।

अतुल की आँखों में आँसू भर आये। बड़े कष्ट से अपने को सँभालकर आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ को साफ़ करके उसने कहा—मौसाजी, मैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ। वह यही कि आप निश्चिन्त होइए, ज्ञानदा का भार आज से मैंने अपने ऊपर लिया।

बात प्रियनाथ समझ नहीं सके। इधर-उधर नज़र दौड़ाकर बोले—ज्ञानदा कहाँ है ?

दुर्गा देवी ने स्वामी के मुख के ऊपर झुककर अश्रु-विकृत रोने के स्वर में कहा—ज्ञानदा को एक बार देखना चाहते हो ?

प्रियनाथ ने पहले तो कुछ उत्तर नहीं दिया, किन्तु अन्त को बोले—नहीं !

दुर्गा देवी रो उठीं, बोलीं—सुनते हो, अतुल क्या कह रहा है ? वह तुम्हारी ज्ञानदा का भार अपने ऊपर लेने आया है। अब तुम कुछ चिन्ता न करो। अभागिन को बहुत गालियाँ और कटु वचन सुना चुके हो, आज ज़रा एक बार बुलाकर आशीर्वाद दे जाओ।

प्रियनाथ चुपचाप ताकने लगे। दुर्गा देवी के फिर वही बात कहने पर उनकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े। असमर्थ हाथ को बड़े कष्ट से उठाकर एक बार अतुल के माथे में छुआकर करवट बदलकर सो रहे। यद्यपि उनके मुँह से कोई बात नहीं निकली, तथापि मरते समय उनके हृदय के ऊपर से एक बहुत बड़ा बोझ हटा सकने की अपनी सफलता का अनुभव अतुल ने निःसंशय रूप से कर लिया। ऐसा अनुभव करने के कारण अतुल अकस्मात् बालक की तरह उच्छ्वसित होकर रो दिया। इस बात की साक्षी रहीं केवल दुर्गा देवी और भगवान्।

दूसरे दिन शाम के वक्त प्रियनाथ ने वही किया जो आजकल फ़ी सदी ८० भले आदमी करते हैं, अर्थात् दफ़्तर की ३०) रुपये महीने की नोकरी का मोह छोड़कर, २६ वर्ष की विधवा और १३ वर्ष की काँरी कन्या का बोझ उससे भी अधिक दुर्भाग्य किसी आत्मीय के सिर पर लादकर, ३६ वर्ष की अवस्था में, प्रायः बिना किसी चिकित्सा के ही, ८० वर्ष के किसी बूढ़े की सी जीर्ण-शीर्ण कङ्कालसार देह को तुलसी-तरु की वेदी के पास छोड़कर, गङ्गा-नारायण-ब्रह्म का उच्चारण सुनते-सुनते, जान पड़ता है, हिन्दुओं के विष्णुलोक को ही सिधार गये।

——

३

छोटे भाई अनाथनाथ को लाचार आँगन की दीवार में एक दरवाज़ा फोड़ना पड़ा। मँझले भाई का दसवाँ-तेरही श्राद्ध-शान्ति हो जाने पर पन्द्रह-सोलह दिन बाद एक दिन उन्होंने दफ़्तर जाते समय चौखट पर खड़े होकर पान चबाते-चबाते कहा—अब तो चुप रहने से काम नहीं चलता भाभी; समझती तो सभी हो, दादा ने मेरे साथ चाहे जैसा बुरा व्यवहार क्यों न किया हो, तुम्हें एक वक्त एक मुट्ठी अन्न खाने के लिए देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। किन्तु इतनी-बड़ी लड़की के ब्याह का बोझ तो मैं अपने ऊपर नहीं लाद सकता। कहने को ही मुझे डेढ़ सौ रुपये महीने में मिलते हैं पर मेरे कच्चे-बच्चे भी तो कम नहीं हैं। उन्हीं का खर्च इतने में पूरा नहीं पड़ता। इसके सिवा मेरी लड़की भी तो सयानी हो आई है, बारहवाँ साल शुरू है। तुम सब देख ही रही हो। इसी से मैं कहता हूँ, इस समय लड़की को साथ लेकर तुम्हें हरिपालपुर जाना चाहिए।

दुर्गा देवी रसोईघर में एक खूँटी पकड़े, उसी के सहारे, किसी तरह खड़ी थीं। उन्होंने डर और सङ्कोच के साथ कहा—दादा का हाल तो तुम जानते ही हो भैया। उनके पास कुछ भी नहीं है। इतनी बड़ी विपत्ति का समाचार पाकर भी एक बार देखने तक को तो वे आये नहीं। इसके

सिवा जब तक वे ख़ुद आकर लिवा न ले जायँ, तब तक मैं जा ही कैसे सकती हूँ ?

दुर्गा की जिठानी स्वर्णमञ्जरी देवर के पास ही, दीवार की आड़ में, खड़ी थी। उसने ज़रा गर्दन निकालकर कहा—तुम्हारे दादा की दशा अच्छी नहीं है, यह मैं जानती हूँ; किन्तु तुम्हारे देवर ही कौन लाट साहब हैं मँझली बहू ? और ये डेढ़ सौ रुपये तो सुनने ही भर के हैं ! जिस तरह मैं गिरस्ती चलाती हूँ, सो मैं ही जानती हूँ ! फिर यह भी तो तुमको सोचना चाहिए कि इतनी बड़ी सयानी लड़की तुम्हारे गले में बँधी हुई है, तुमको अपने मन से बुलाकर अपने घर में रखने को भला कौन तैयार होगा ? लेकिन इसी लिए मान-अभिमान का ख़याल करके बैठे रहने से भी तो काम नहीं चलने का !

दुर्गा देवी ने धीरे-धीरे कहा—नहीं दीदी, मेरे अब मान-अभिमान क्या है !

स्वर्णमञ्जरी देवर को बायें हाथ से पीछे ठेलकर ख़ुद आगे आकर कहने लगी—तुमको मैंने कुछ बुरी बात कही नहीं है मँझली बहू, जो तुम इस तरह चबा-चबाकर जवाब देने लगीं। सो तुम चाहे ग़ुस्सा करो, चाहे बुरा मानो, तुम्हारी इस पङ्ख-कटी परी का ब्याह हमारे किये न हो सकेगा। लड़की तो छोटी बहू के भी पेट से पैदा हुई है। क्या मजाल है किसी की, जो एक बार छोटी बहू के बच्चों की ओर नज़र पड़ने पर यों ही

आँख फेरकर चला जाय ! मैं तो सच बात कहूँगी मँझली बहू, जैसी तुम्हारी लड़की की शकल-सूरत है, वैसे ही जाकर हरिपालपुर में भाई के गले पड़कर जो कोई देहाती किसान मिल जाय, उसी के गले मढ़ आओ, झञ्झट मिट जाय। सुनती हूँ, उस तरफ़ के लोग ख़ूबसूरत या बदसूरत नहीं देखते—लड़की भर चाहते हैं।

दुर्गा चुप हो रहीं। जिस विष की जलन से वे पति-सहित जुदा हुई थीं, पति के मरने पर उसी विष के दाँत को डसने के लिए उद्यत देखकर दुर्गा देवी डर के मारे सन्न हो गईं।

स्वर्ण ने फिर कहा—जैसे को तैसा मिला करता है, और उसके लिए कोई कुछ कह भी नहीं सकता। किसी अपढ़ किसान के साथ लड़की का ब्याह कर देने से तुमको कोई कुछ कह नहीं सकेगा, तुम्हारी निन्दा न होगी। हाँ, ऐसा करने से मुझे बेशक लोग बुरा कह सकते हैं। ऊँचे दर्जे के तीनों इम्तिहान पास न करनेवाले, इससे कम पढ़े-लिखे, लड़के को अगर मैं जमाई बनाऊँ तो देश भर में दूर-दूर तक के लोग हँसी उड़ाने लगेंगे। सभी कहेंगे—इन लोगों ने यह क्या किया! घर में इतनी बड़ी पुरखिन के मौजूद रहते दुर्गा की प्रतिमा जैसी लड़की को पानी में बहा दिया! सच है न अनाथ भैया?

इतना कहकर स्वर्ण ने देवर अनाथ बाबू की ओर देखा।

"इसमें क्या झूठ है!" कहकर अनाथनाथ ने महामान-

नीया बड़ी भावज की मर्यादा की रक्षा करके आफ़िस का वक़्त हो जाने के बहाने प्रस्थान किया।

स्वर्ण ने कहा—अपने भाई को पकड़-पकड़कर चाहे जिस तरह हो, किसी मर्द के गले लड़की मढ़ दो जाकर। इसमें तुम्हारे लिए लज्जा की बात कुछ नहीं है मँझली बहू, कोई तुम्हारी निन्दा न कर सकेगा। तुम्हारे मर्द को सिर्फ़ तीस रुपये महीने में मिलते थे। इसके सिवा उन्हें जानता-पहचनता ही कौन था? इन लोगों का भाई होने से ही जो कुछ लोग जानते हों तो जानते हों। मैं कहती हूँ, कल का दिन अच्छा है, कल ही भाई के पास चली जाओ।

दुर्गा देवी ने एक बार मन में अतुल के वचनों को याद किया, किन्तु जिठानी के आगे इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। क्योंकि इसी जिठानी के सम्बन्ध से अतुल के साथ उनका जो कुछ सम्बन्ध है सो है। स्वर्णमञ्जरी अतुल की मा की ममेरी बहन है।

उस दिन ज्ञानदा जिस तरह अतुल के पैरों पर गिरकर रोई-धोई थी, सो उसकी मा दुर्गा ने देखा अवश्य था, किन्तु इतनी बड़ी विपत्ति सिर पर आ पड़ने के कारण वे इतनी प्रकृतिस्थ न थीं कि उसका कोई विशेष अर्थ मन में सोच सकतीं। किन्तु दुखिया के घर में तो एकाग्र मन से शोक करने का भी अवसर नहीं होता। इसी से स्वामी की मृत्यु के बाद दूसरे ही दिन से वे इसी बात पर विचार कर रही थीं। भीतर जाकर उन्होंने

देखा कि लड़की चुपचाप फ़र्श पर बैठी हुई है। धीरे-धीरे उसके पास जाकर माता ने कहा—दीदी ने जो कुछ कहा, सो तूने सुना ?

लड़की ने सिर हिलाकर इसका उत्तर दिया कि हाँ, उसने सब सुन लिया। इसके बाद दुर्गा को यह न सूझ पड़ा कि अब क्या कहना चाहिए। किन्तु लड़की ने आप ही आगे की बातचीत के लिए सुभीता कर दिया। उसने कहा—आज तक और कभी तो तुम मायके गईं नहीं मा। इस समय एक बार चलो, हो न आओ।

मा ने कहा—मेरी मा अब ज़िन्दा नहीं हैं। दादा ने आज तक किसी दिन बात नहीं पूछी। इतनी बड़ी विपत्ति का हाल सुनकर भी एक चिट्ठी तक नहीं लिखी। अपनी ओर से गले पड़कर किस तरह उनके पास जाऊँ, तू ही बता ?

लड़की ने कहा—दुखिया की खोज-ख़बर ख़ुद कभी कोई नहीं लेता मा। उन लोगों ने ख़बर नहीं ली, तो ये लोग भी तो ख़बर नहीं लेते; बल्कि ये लोग यहाँ से चले जाने को ही कहते हैं। हमारा मान-अभिमान सब बाबूजी के साथ ही चला गया मा। चलो, हम वहीं जाकर रहें।

मा की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। लड़की ने स्नेहसहित मा के आँसू पोंछकर कहा—मैं जानती हूँ कि सिर्फ़ मेरे ही कारण तुम कहीं जाना नहीं चाहतीं; नहीं तो बड़ी काकी की ऐसी कड़ी-कड़वी बातें सुनकर तुम यहाँ

कभी एक दिन और नहीं ठहरनेवाली थीं। लेकिन मैं कहती हूँ, मेरे लिए तुमको रत्ती भर भी चिन्ता न करनी पड़ेगी मा। चलो, कुछ दिन के लिए हम और कहीं चलें। यहाँ रहने से तुम्हारे प्राण न बचेंगे।

मा से अब और रहा नहीं गया। वे लड़की को छाती से लगाकर फफक-फफककर रोने लगीं। लड़की ने भी रोका नहीं, मा को शान्त करने की चेष्टा नहीं की। वह चुपचाप मा की छाती पर मुँह रखकर बैठी रही। बहुत देर बाद दुर्गा देवी आप ही से कुछ शान्त होकर आँसू पोंछकर बोलीं—तुझसे सच कहती हूँ ज्ञानदा, मैं जिधर सूझ पड़ता उधर ही उस दिन चल खड़ी होती, जिस दिन तेरे बाबूजी इस दुनिया से सदा के लिए बिदा हुए थे। केवल तेरे ही कारण नहीं जा सकी।

"यह मैं खूब जानती हूँ मा।"

"अच्छा, एक बात मैं तुझसे पूछती हूँ, सच बता बेटी। उस दिन अतुल ने वह बात क्यों कही थी? ना ज्ञानदा, इस तरह मुँह ढकने का काम नहीं है। लाज-शरम करने का यह समय नहीं है। मैं जानती हूँ कि वह लड़का झूठ बोलनेवाला नहीं है। मगर मैं यह जानना चाहती हूँ कि उनके अन्तकाल में अतुल ही क्यों उन्हें ऐसा भरोसा दे गया, और तू ही क्यों इस तरह उसके पैरों के ऊपर गिरकर रोई-धोई?"

ज्ञानदा ने मा की छाती पर मुँह रक्खे हुए अस्पष्ट स्वर में इतना ही उत्तर दिया—यह कुछ मैं नहीं जानती अम्मा।

दुर्गा देवी ने ज़ोर करके लड़की का मुँह ऊपर उठाकर एक बार उसे देखने की चेष्टा की; किन्तु लड़की भी ज़ोर से अपना मुँह मा की छाती में छिपाये ही रही। विफल-मनोरथ होकर दुर्गा ने फिर कहा—तुम्हारे बाबूजी की ज़िन्दगी मे मैंने इस बारे में ज़रूर ही कुछ नहीं सोचा था, लेकिन उनकी मृत्यु के दिन से सोचते-सोचते अब बहुत सी बातें मेरी समझ में आने लगी हैं। अतुल के मुँह से निकली हुई कितने ही दिनों की कितनी छोटी-मोटी बातें आज मुझे याद आ रही हैं।—

यों कहते-कहते उन्होंने अकस्मात् व्यग्र होकर कन्या के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा—सच बता बेटी, मैं जो समझ रही हूँ वह झूठ तो नहीं है? मैंने इधर कई दिन से केवल कल्पना का सपना ही तो नहीं देखा है?

ज्ञानदा ने उसी तरह मुँह छिपाये रहकर कोमल स्वर में कहा—क्या जानूँ मा, उनका धर्म उन्हीं के हाथ है। वे जानें, उनका धर्म जाने।

मा ने आनन्द से अधीर होकर रोते हुए कहा—मुझे संशय में डाले रहकर अब और अधिक कष्ट न पहुँचा बेटी। एक बार खुलासा करके कह दे, मैं तेरे बाप के लिए केवल एक बार जी खोलकर रो लूँ। मेरा यह रोना आज वे ज़रूर सुनेंगे!

लड़की ने चुपके-चुपके कहा—रोओ न मा, मैं तुम्हें रोने को मना नहीं करती। मैंने उनसे बाबूजी को जताने के लिए कहा था, और उन्होंने आप ही अपने मुँह से बाबूजी को अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई थी। अब अपने धर्म की रक्षा करना उन्हीं के हाथ है।

अब की दुर्गा देवी ने कोई बाधा नहीं मानी, जबरन् लड़की के लज्जारुण, आँसुओं से भीगे हुए मुख को ऊपर उठाकर उसमें असंख्य चुम्बन के चिह्न अङ्कित कर दिये; फिर उसे उसी तरह छाती से लगाकर वे देर तक चुपचाप आँसू बहाती रहीं। फिर आँसू पोंछकर धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगीं—यही बात है बेटी, यही बात है। अतुल मेरा लाखों बरस जिये, उसका धर्म उसी के हाथ है। मगर आज तक हममें से किसी को किसी दिन यह ख़याल नहीं हुआ था बेटी कि एक दिन तूने ही अतुल को मौत के मुँह से बचाया था। उस साल, लोग कहते हैं, वह बड़ा विकट बेरीबेरी नाम का रोग फैला था। ख़ैर, वह कोई भी रोग हो; वही रोग पहले अतुल की मा को हुआ था, और उसके बाद ही अतुल को भी। उसमें पहले देह का कोई हिस्सा फूल उठता था, और फिर वही फटकर घाव हो जाता था। अतुल के तो बचने की कोई आशा ही न रह गई थी। सड़े घावों से ऐसी बदबू निकल रही थी कि नाक नहीं दी जाती थी। डर के मारे कोई अतुल के घर की तरफ़ मुँह नहीं करता था। उस समय तूने

नन्हीं सी लड़की होकर भी दिन-रात यमराज के साथ युद्ध करके, लगातार देख-रेख और सेवा-टहल करके, अतुल की जान बचाई थी। उस धर्म की क्या वह कभी उपेक्षा कर सकता है? सावित्री की तरह तू ने अतुल को यमराज के हाथ से छीन लिया था। तुझे भगवान् भला किसी और पुरुष के हाथ में सौंप सकते हैं? यह धर्म अगर न रहे, तो फिर संसार का नाश हो जाय।

ज़रा चुप रहकर फिर पुलकित होकर कहने लगीं—अब तू मुझसे जहाँ जाने को कहेगी मैं वहीं जाऊँगी। लेकिन तू तो अब अतुल की अनुमति बिना लिये, उससे बिना पूछे, कहीं जा नहीं सकती बेटी। तेरा ही कहना ठीक है, तू ठीक ही कहती है। इसी लिए मेरा बच्चा (अतुल) बाहर से लौटकर आते ही सबेरा होते न होते चूड़ियाँ देने के बहाने तुझे देखने दौड़ा आया। अजी मेरे देवता, तुम और एक साल जीते रहकर अपनी आँखों यह शुभ काम क्यों न देख गये?

यों कहते-कहते उन्होंने उच्छ्वसित रुलाई के वेग को कपड़े के आँचल से रोका।

"मँझली बहू, ओ मँझली बहू!"

दुर्गा देवी ने चटपट लड़की को अलग हटाकर आँखें पोंछकर उत्तर दिया—क्या है दीदी?

बड़ी बहू ने एक बार भीतर की ओर दृष्टिपात करके कठिन स्वर में कहा—माना कि तुम लोगों के शोकाकुल शरीर

को भूख-प्यास नहीं सताती, लेकिन घर के और सब आदमी तो उपास करके रह नहीं सकते। ज़रा कोठरी के बाहर एक बार निकलकर देखो तो कितना दिन चढ़ आया है!

दुर्गा देवी घबराकर झटपट कोठरी के बाहर आकर खड़ी हो गईं। दिन चढ़ आने की ओर देख लज्जित होकर लड़की का नाम लेकर कुछ कैफ़ियत देने का उद्योग करते ही स्वर्ण-मञ्जरी ने तीखे स्वर में कहा—अच्छा तो है, रसोई का काम खतम करके फिर लड़की को पास बिठलाकर ख़ूब समझाओ-बुझाओ न—मैं मुँह से एक अक्षर भी न निकालूँगी। लेकिन इस तरह तुम्हारे बैठे रहने से तो मेरे लड़के-बाले भूख के मारे मरे जा रहे हैं। ना भाई, इस तरह की अनोखी बातें मुझसे न सही जायँगी, मैं कहे देती हूँ!

इतना कहकर निःसन्तान बड़ी बहू, छोटी देवरानी के बाल-बच्चों के ऊपर मातृस्नेह की पराकाष्ठा दिखाकर, उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, चल दीं।

अनाथनाथ की गिरिस्ती में फिर से प्रवेश करते ही, उसी दिन से, दुर्गा को रसोई करने का सारा भार अपने सिर लेना पड़ा था। इससे बड़ी बहू और छोटी बहू दोनों को दिन भर की छुट्टी मिल गई थी। एक जनी महल्ले भर में गश्त लगाकर और घर में खर्च-पत्तर बहुत अधिक हो रहा है, यह कहकर लड़ती-झगड़ती रहती थी, और दूसरी सोकर, क़िस्से-कहानी पढ़कर, गपशप लड़ाकर दिन-रात बिता देती थी।

अनाथ बाबू कलकत्ते में नौकरी करते थे; दफ़्तर के डेली पैसेञ्जर थे—रोज़ सबेरे साढ़े आठ बजे घर से चल देते थे। सबेरे बहुत तड़के उठकर यथासमय उनके लिए भोजन बना देना इस घर में नित्य का एक घोर अशान्ति का काम था। इस बात पर छोटी और बड़ी बहू के बीच अक्सर चख़चख़ हो जाती थी, मनमैली बनी रहती थी। इधर कई दिनों से, जब से मँझली बहू के सिर यह ज़िम्मेदारी फिर से आ पड़ी थी, इस झगड़े से छुटकारा पाकर दोनों के बीच, बहुत दिनों के बाद, फिर हेलमेल या प्रीति के ग्रन्थि-बन्धन की सूचना हो रही थी; किन्तु आज सबेरे एकाएक उस प्रीति-बन्धन के फिर एक बार टूट जाने का उपक्रम हुआ। कारण यह हुआ कि सात बजने को थे, इसी समय दासी ने आकर तत्काल सोकर उठी हुई छोटी बहू को यह सूचना दी कि चूल्हे का कोयला सब सुलग चुका, दम भर में बुझने चाहता है, फ़ौरन् रसोई चढ़ा देने की आवश्यकता है।

छोटी बहू ने खीझकर पूछा—क्यों, मँझली दीदी क्या कर रही हैं? सात बजने चाहते हैं, शायद बेख़बर पड़ी सो रही हैं।

"बेख़बर पड़ी सो क्यों रही हैं? माँ-बेटी दोनों सबेरे ही उठकर अपना सामान सँभालकर गठरी-मोटरी बाँध-बूँध रही हैं। इसी आठ बजे की गाड़ी से हरिपालपुर जायँगी।"

छोटी बहू को कल की बातचीत याद आ गई। किन्तु उसने कुछ भी प्रसन्न न होकर चिल्लाकर कहा—जाना कोई

हँसी-ठट्ठा है कि जाने का इरादा किया और चल दीं। बाबू का हुक्म ले लिया है? दीदी से कह दिया है?

दासी ने कहा—बाबू की बात तो मैं नहीं जानती छोटी बहू, लेकिन बड़ी बहू ने तो ख़ुद ही उन लोगों से आज चले जाने के लिए कहा था, यह जानती हूँ।

"तो फिर उन्हीं से जाकर साढ़े आठ बजे बाबू को खाने के लिए देने को कह, मैं नहीं कुछ जानती" कहकर छोटी बहू क्रोध के मारे आग-बबूला होकर, थोड़ा सा पिसा हुआ तमाखू का जला गुल—दाँत माँजने के लिए—मुँह में डालकर, कन्धे पर अँगोछा डाले, नहाने के लिए, घर से मिले हुए तालाब की ओर तेज़ी से चल दी।

"बड़ी बहू घर में हों, तब तो उनसे कहूँगी! वे तो गङ्गा नहाने चल दी हैं।" यह कहकर दासी अपने काम से चली गई।

छोटी बहू को नहाकर लौटना ही पड़ा। क्योंकि दफ़्तर का बड़ा साहब उनके क्रोध की क़दर नहीं करेगा। दो ही उपाय ठहरे, या तो जो कुछ बन पड़े वह तैयार करके स्वामी को कुछ खिला देना होगा, और या स्वामी को ठीक समय पर भूखे ही चले जाना पड़ेगा। छोटी बहू ने लौटकर दुर्गा देवी के दरवाज़े के सामने खड़े होकर तीखे स्वर में कहा—जाओगी तो हो ही, लेकिन इस तरह दुष्टता करके गये बिना क्या न बनता मँझली दीदी?

इस अचिन्तनीय आक्रमण को देखकर दुर्गा देवी सन्नाटे में आ गईं।

छोटी बहू कहने लगी—हम लोग न जानते थे कि तुम सबेरे ही चली जाओगी। बड़ी दीदी गङ्गा नहाने गई हैं, और मैं अभी उठी हूँ। उन्हें ठीक समय पर रसोई कैसे मिलेगी, बताओ ?

"प्रणाम करता हूँ, छोटी मौसी ! मँझली मौसी, प्रणाम।"

छोटी बहू ने घूमकर अतुल की ओर देखा, और कहा—तुम अचानक कैसे आ गये अतुल ?

अतुल कलकत्ते में एक 'मेस' में रहता है। वह दुर्गा देवी की चिट्ठी पाकर एकदम दौड़ता हुआ अभी गाँव में आ पहुँचा है, अभी तक अपने घर नहीं गया।

अतुल ने कहा—सबेरे मँझली मौसी वग़ैरह हरिपालपुर के लिए गङ्गा-यात्रा* करेंगी, तो क्या मैं एक बार आख़री मुलाक़ात करने भी न आऊँ ? हरिपालपुर ! अर्थात् मलेरिया का डिपो !—यह तो बताओ भला, शुरू कुँआर में ही ऐसी सुबुद्धि तुम्हें किसने दी है मँझली मौसी ? वाह-वाह ! यह तो देखता हूँ गठरी-मोटरी सब बाँध-बूँधकर बिलकुल तैयार हो।

---

* बङ्गालियों के यहाँ यह रीति है कि जब किसी की मृत्यु अनिवार्य और आसन्न समझ ली जाती है, तब उसे गङ्गा ले जाते हैं। वही अन्तिम-यात्रा गङ्गा-यात्रा है।

अब उसने हँसते-हँसते जो कोठरी के भीतर नजर दौड़ाई, तो एक कोने से अश्रु-पूर्ण लाल हो रही आँखों का टेलीग्राफ पाकर वह सन्नाटे में आकर रुक गया।

छोटी बहू ने पूछा—तुम्हें यह खबर किस तरह मिली अतुल?

"मुझे? वाह—" इतना ही कहकर अतुल ने अपना उत्तर समाप्त कर दिया।

अकस्मात् आँगन के एक अनिर्दिष्ट स्थान से, गङ्गा-स्नान करके लौटी हुई, स्वर्णमञ्जरी का कण्ठस्वर शब्दवेधी बाण की तरह आकर हर एक के कान मे खटक गया। गङ्गा-स्नान करके शान्त-शुचि होकर उसने जैसे ही घर के भीतर पैर रक्खा कि दासी के मुँह से उसे चूल्हे की आग सुलगकर बुझ जाने की खबर मिली। बस, मँझली देवरानी के सद्य-वैधव्य के यथार्थ कारण की घोषणा मुक्त-कण्ठ से करती हुई वह भीतर दाखिल हुई। उनके कहने का सारांश यह था—"चारों पैर अधर्म पूरा हुए बिना क्या भगवान् इस तरह किसी का सर्वनाश करते हैं? कभी नहीं करते। यह उनकी धर्म की गिरिस्ती है, मजाल नहीं कि यहाँ अधर्म हो जाय।" सीधे चले आकर भीतर की चौखट के भीतर एक पैर रखकर उसने कहा—तुम्हारा मतलब तो यही है न मँझली बहू कि बिना खाये-पिये, उपवास करके, अनाथ दफ़्र जाय, और शाम को पित्त गिरने से बुखार में आकर घर में पड़ जाय? इसके बाद अपना जैसा सर्वनाश हुआ है, वैसा ही और एक आदमी का भी हो।

दुर्गा मन ही मन काँप उठीं। बोली—जिसके करम इस तरह फूट चुके हैं वह तो अपने बड़े से बड़े शत्रु के लिए भी ऐसी कामना कभी नहीं करेगा दीदी! मैंने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है, जो तुम रोज़ उठते-बैठते ऐसी कड़ी-कड़वी बातें सुनाती हो?

स्वर्ण ने हाथ मटकाकर मुँह बेहद बिगाड़कर कहा—वाह री मेरी नन्ही नादान! तुम कुछ नहीं जानतीं, मुझे ही बतलाना होगा? साढ़े सात बजने को हैं, दफ़्तर जाने की टेम हो गई, रसोई कौन करेगा?

अतुल अब तक सन्नाटे में आकर खड़ा-खड़ा सब सुन रहा था। वह अपनी बड़ी मौसी को अच्छी तरह पहचानता था। इसी लिए उससे बातचीत भी बहुत कम करता था। किन्तु इस समय उससे और अधिक सहा नहीं गया। इसी लिए वह मौसी के पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर दे बैठा। बोला—सच बात कहने से तुम्हीं नाराज़ हो जाओगी मौसी। किन्तु यह तुम भी जानती हो और महल्ले के और भी चार आदमी जानते हैं कि बिलकुल ही करम फूटे बिना कोई हम लोगों की दी रोटी से पेट भरने के लिए नहीं आता। फिर भी आज जाने के दिन इन अभागिनों को ज़रा माफ़ कर देने से—बुरा-भला न कहने से—कुछ तुम्हारी हानि न हो जाती मौसी।

एकाएक अतुल की बातों के तीखेपन से दोनों देवरानी-जेठानियों को बेहद अचरज हुआ। मिनट भर के लगभग

किसी के मुँह से कोई शब्द न निकला। इसके बाद स्वर्ण-मञ्जरी ही पहले बोलीं—कलकत्ते से क्या तू हम लोगों से झगड़ा करने को यहाँ दौड़ा आया है ?

छोटी बहू ने व्यङ्ग करके कहा—झगड़ा करने के लिए क्यों वह आवेगा दीदी ? उसकी मँझली मौसी को हम हरिपालपुर में 'गङ्गायात्रा' करने भेज रही हैं, इसी से वह उनसे आखरी भेंट करने आया है !

बड़ी बहू ने कहा—अच्छा ! यह बात है ?

छोटी बहू बोली—यही बात है दीदी, यही बात है। वही मैं तब से सोच रही हूँ कि हम घर के आदमी कोई नहीं जान पाये, और तुम्हारी बहन के लड़के ने कलकत्ते में बैठे-बैठे कैसे जान लिया ? तब तो लोग जो कुछ कहते हैं, वह झूठ नहीं देख पड़ता।

स्वर्ण ने क्रोध से जा-बेजा भूलकर, चिल्लाकर, हाथ-मुँह मटकाकर उपद्रव मचा दिया। कहने लगी—अच्छा तो है भैया, तुम्हें जो ऐसा ही दर्द हो, तो अपनी सास उर्फ मौसी को 'गङ्गायात्रा' क्यों कराओगे, अपने घर ही न ले जाओ। देखकर गाँव के लोग वाहवा-वाहवा करेंगे।

स्वर्ण के विष की जलन में अतुल का भी दिमाग़ सही नहीं रहा। वह भी कह बैठा—अच्छा तो है मौसी, तुम लोग अपने आदमी ठहरे, बात तुमने दो दिन पहले ही जान ली तो अच्छा ही हुआ। वे मेरे घर जायँ तो मैं उन्हें सिर-माथे पर ले जाने के लिए राज़ी हूँ। उसके लिए तुम्हारे गाँव

के लोग वाहवाही देंगे या छिः-छिः करेंगे, इसकी मुझे रत्ती भर भी परवा नहीं।

ताव में आकर बात कह तो डाली, लेकिन कहकर जैसे अतुल सन्न हो रहा, वैसे ही उसके गुरुजन (अर्थात् दोनों मौसियाँ) भी असह्य आश्चर्य के मारे सन्नाटे में आ गये। यह तो मानो अकस्मात् एक प्रचण्ड बवण्डर कहीं से दौड़ आकर लज्जा-शर्म, पर्दा-आड़ सभी कुछ पलक मारते ही तोड़-फोड़कर उड़ा ले जाकर एक बहुत बड़े सुनसान मैदान के बीच सबको खड़ा कर गया। किसी के आगे किसी के कुछ छिपाने या रखने-ढकने की जगह अब नहीं रह गई।

अतुल चुपचाप वहाँ से चला गया। जदू गाड़ीवान ने बैलगाड़ी द्वार पर लाकर खड़ी कर दी, और भीतर आकर कहा—माईजी, चलने का बखत हो गया, सामान क्या रखना होगा, लाओ, दो। अभी से चले बिना गाड़ी मिलने के बखत स्टेशन पहुँचना मुशकिल होगा।

आज्ञा पाकर गाड़ीवान घर के भीतर आकर बतलाये हुए ट्रङ्क और बँधे हुए बिस्तरे को सिर पर लादकर चला गया। छोटी बहू और बड़ी बहू भी तेजी के साथ दूसरे घर को चल दीं। दुर्गा देवी ने दुर्गा भगवती का नाम लेकर घर के दरवाजे में ताला लगाया। लड़की का हाथ पकड़कर वे चुपचाप जाकर गाड़ी पर सवार हो गईं। लड़की बेहोशी की सी हालत में माता की गोद में आँखें मूँदकर लेट रही।

———

४

ग्यारह वर्ष के बाद दुर्गा देवी हरिपालपुर में अपने बाप के घर आईं। जिस समय वे गाँव में पहुँचीं उस समय शरद् ऋतु की सन्ध्या ऐसे एक अस्वास्थ्यकर धुँधले धुएँ को लेकर सारे गाँव के ऊपर घेरा डाले जमी बैठी थी कि उसके भीतर जाते ही दुर्गा देवी का कलेजा धड़क उठा। घर मे मा या बाप कोई जीवित न था, केवल बड़े भाई शम्भू चटर्जी मौजूद थे। उनको पारी का बुखार आता था। उस दिन उन्हें शाम को बुखार आने की पारी भी थी। इसलिए सूर्यास्त के उपरान्त ही बुखार के स्वागत के लिए प्रस्तुत होकर वे बिछौने पर जा बैठे थे। दुर्गा के आने की खबर पाते ही बहुत पुराने कण्टोप से सिर और दोनों कान ढककर खड़ाऊँ खटखटाते हुए बाहर निकल आये। दुर्गा को पहचानकर बोले—कौन, दुर्गा आई है क्या? आ, भीतर आ।

दुर्गा ने रोते-रोते आगे बढ़कर दादा के श्रीचरणों में प्रणाम किया।

ज्ञानदा के प्रणाम करने पर चटर्जी महाशय बोले—यह शायद तेरी लड़की है? इसका ब्याह कहाँ किया?

दुर्गा ने कुण्ठित स्वर में कहा—ब्याह तो अभी तक कर नहीं पाई दादा—चाहे जहाँ हो, जल्दी ही—

शम्भु—ऐं! ब्याह नहीं किया? यह तो अब बहुत सयानी—पूरी औरत—हो चुकी है दुर्गा!

बहुत दिन से भेंट नहीं हुई थी। इतने दिनों बाद देखने के कारण भाई को बहन के प्रति कुछ सहानुभूति जो हुई थी, वह दम भर में दूर हो गई; भाई का कुछ करुण कण्ठस्वर पल भर मे ही कठिन हो गया। कुछ रूखे स्वर मे भाई ने कहना शुरू किया—यही तो चिन्ता की बात है। यहाँ के लोग ऐसे दुष्ट है कि जान पावें तो—अच्छा, देख दुर्गा, रसोई और ठाकुरद्वारे वगैरह में इसके घुसने देने की कोई जरूरत नहीं। तू तो हमारे देश के समाज की सख्ती का सब हाल जानती ही है! खास कर हमारा यह हरिपालपुर—ऐसे पाजी लोग दुनिया भर में और कहीं न होंगे। अच्छा आ, घर के भीतर तो आ। इतनी बड़ी सयानी लड़की को साथ न लाकर उसके काका के पास छोड़ आती तो दो दिन सुख से यहाँ रहती भी। यहाँ रहने से तो फिर—समझी कि नहीं दुर्गा? खैर, जा, हाथ-पैर-मुँह तो धो।—अरे कहाँ गईं, सुनती हो?

इस तरह अपनी स्त्री की खोज करते हुए शम्भू चटर्जी फिर खड़ाऊँ खटखटाते भीतर घुस गये। दुर्गा और उनकी कन्या ज्ञानदा ने जिस तरह मन मारकर उनके पीछे-पीछे घर में प्रवेश किया, उसे केवल भगवान् ही ने देखा।

शम्भू की पहली स्त्री मर चुकी थी, उन्होंने यह दूसरा ब्याह किया था। पहली भावज को दुर्गा ने देखा था, किन्तु

इस दूसरी भावज को नहीं देखा। शम्भू चटर्जी की यह स्त्री जैसी काली है, वैसी ही रोगी-सी दुबली और लम्बी है। मलेरिया-बुखार में भोगते-भोगते शरीर का रङ्ग जले कुन्दे का जैसा हो गया है। तीन दिन का गोबर आँगन के बीच में ढेर था। अभी उपले पाथकर उसको ख़तम करके हाथ-पैर धोकर वह साँझ की दिया-बत्ती का इन्तज़ाम कर रही थी; स्वामी के पुकारने से सामने आकर मेहमानों को देखते ही ठिठककर खड़ी हो रही। शम्भू को बुख़ार चढ़ता आ रहा था, अतएव अतिथियों की अभ्यर्थना का काम स्त्री को सौंपकर और यथासम्भव संक्षेप में बहन और भानजी का परिचय देकर वे अपनी कोठरी में जाकर घुस रहे।

दुर्गा की भावज का नाम था भामिनी। मेदिनीपुर ज़िले की लड़की थी। वह बातचीत ज़रा ऐंठ-ऐंठकर करती थी, जैसी कि उधर के लोगों की आदत है। भावज हँसकर, ऊपर और नीचे के समूचे मसूढ़े खोलकर, ननद का हाथ पकड़े हुए उसे रसोईं की दालान में ले गई; वहाँ पटरा डालकर उस पर उसे बिठा दिया। भावज की हँसी और बातचीत का निराला तर्ज़ देखकर दुर्गा की अन्तरात्मा सूख गई। आते समय दुर्गा एक हाँड़ी भर रसगुल्ले अपने साथ ले आई थी। वह हाँड़ी नीचे रखते ही लड़की-लड़कों के एक झुण्ड ने टीड़ीदल की तरह न-जाने कहाँ से उड़ आकर उसे चारों ओर से घेर लिया। कोई रोता था, कोई चिल्लाता था, कोई

दूसरे को ढकेलकर आप ही रसगुल्ले खा जाना चाहता था। छीना-झपटी मच गई। शोर-गुल के मारे कान फटने लगे। लड़कों की मा एक को आधा, दूसरे को चौथाई, और तीसरे तथा चौथे को एक-एक टुकड़ा रसगुल्ले का बाँटकर चील्ह की तरह झपट्टा मारकर हाँडी उठा ले गई। उसे उसने सोने की कोठरी में छींके पर टाँग दिया। लड़कों में से जिसने जो पाया था, वह उसे एक ही बार में अमृत की तरह लील गया, और फिर हाथ में लगे हुए रस को चाटता हुआ चल दिया।

दुर्गा यहाँ की रीति-नीति कुछ-कुछ जानती थीं। क्योंकि वे इसी गाँव की लड़की थीं। किन्तु ज्ञानदा ने आठ-दस बरस के लड़कों तक को बिलकुल नंगे फिरते देखकर लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया। लड़कियों की भी प्रायः यही दशा थी। लड़कियों और लड़कों के बीच, इस बारे में, निहायत मामूली फ़र्क़ था। ज्ञानदा जिस गाँव में रहती थी वह भी शहर नहीं है; किन्तु वहाँ अच्छी राहें है, सड़क भी पक्की है। यहाँ की तरह आम, कटहल और बाँस के पेड़ों के झुरमुट सिर के ऊपर घोर अँधेरा किये हुए वहाँ खड़े नहीं हैं। यहाँ की तरह वहाँ गोबर और सड़े हुए पटसन (पाट) की बदबू चारों ओर से आकर साँस लेने और छोड़ने में रुकावट नहीं डालती है—व्याकुल नहीं कर देती है।

अभी पूरा अँधेरा नहीं हुआ था कि एक सियार आकर बीच आँगन में खड़ा हो गया। मारने के लिए बड़े लड़के के

दौड़ते ही वह भाग खड़ा हुआ। चारों ओर बेशुमार झींगुरों ने विकट एक-तान शब्द शुरू कर दिया। दीवाल से मिली हुई पेड़ की एक सूखी डाल पर अचानक एक अश्रुतपूर्व विकट शब्द सुनकर ज्ञानदा ने डर के मारे चुपके-चुपके मा के कान में पूछा—यह कौन बोल रहा है मा ?

यह प्रश्न मामी ने सुन लिया, और उसी ने उत्तर दिया—यह तक्खप की आवाज़ है बिटिया।

ज्ञानदा काँप उठी। उसने फिर पूछा—तक्खप कौन ? तक्षक साँप तो नहीं ?

मामी ने कहा—हाँ बिटिया वही-वही। सुनते हैं, जिसने कभी किसी राजा को काटा था। हर पेड़ में भरे पड़े हैं यहाँ।

उत्तर सुनकर ज्ञानदा ने एक बार अपनी मा के मुँह की ओर देखा। पहले ही उसका जी चाहता था कि ख़ूब जी भरकर रोवे, इस समय ऐसी बातें सुनकर वह माता की गोद में लेट गई और फफक-फफककर रोने लगी। वह बार-बार यही कहने लगी—यहाँ से चलो अम्मा, यहाँ मैं घड़ी भर भी नहीं जीती रहूँगी।

यह सुनकर मामी को बड़ा अचरज हुआ। वह कहने लगी—डर की क्या बात है जी। ये तो सब देवता हैं। कभी किसी को कष्ट नहीं देते, किसी की कुछ हानि नहीं करते। इसके सिवा यहाँ साँप वग़ैरह के काटने से मरते ही कितने आदमी हैं बिटिया ? डर जो कुछ है, वह इसी राँड़ मलारिया

(मलेरिया) का है। एक दफ़े जिसे पकड़ लेती है, उसे मुर्दा बनाकर ही छोड़ती है। अब की साल बीस दिन से तुम्हारे मामा के पीछे पड़ी हुई है; इसी बीच में उन्हें फूस बना डाला है। और कुछ दिन यही हाल रहा तो बिटिया, इस गाँव में कौन किसके मुँह में पानी डालेगा, यह नहीं कहा जा सकता।

ज्ञानदा मन में अतुल की चलते समय की बातें सोचकर चुपचाप पड़ी रही। उस रात को एक बार भी वह अच्छी तरह सो नहीं सकी। मा की छाती के पास मुँह रखकर पड़े-पड़े बार-बार वह चौंक उठने लगी। इसी तरह सारी रात गुज़र गई। सबेरा हुआ। नई जगह नया प्रकाश आँखों के आगे उपस्थित होने से ज्ञानदा को रत्ती भर भी आनन्द न हुआ, उसका जो तनिक भी नहीं हुलसा। बल्कि सम्पूर्ण जल-वायु, प्रकाश और दृश्य कल से भी अधिक भार होकर उसके हृदय को दबा बैठा।

इतनी बड़ी क्वाँरी लड़की देखकर गाँव के पास-पड़ोस के लोग घोर आश्चर्य प्रकट करने लगे। बङ्गाल में लड़की की उमर ठीक-ठीक बतलाने की चाल नहीं है। सभी जानते हैं, मा-बाप को दो-एक वर्ष कम करके लड़की की उमर बतलानी पड़ती है। अतएव दुर्गा ने जब लड़की की उमर तेरह वर्ष की बतलाई, तो सबने पन्द्रह वर्ष की समझ ली। इसके सिवा यही एक सन्तान होने के कारण मा-बाप ने— ख़ास कर मा ने—आप न खा-पीकर, पहनकर लड़की को अच्छी तरह

खिलाया-पिलाया और पहनाया-ओढ़ाया था, जिससे उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, शरीर हृष्ट-पुष्ट था। वह अखण्ड स्वास्थ्य इस समय और भी काल हुआ। ज्ञानदा की ठीक अवस्था के विरुद्ध उसकी तन्दुरुस्ती और उसका डीलडौल ही गवाही देने लगा।

दो दिन भी न बीतने पाये थे कि शम्भू ने प्रसङ्ग छेड़कर बहन से कहा—लड़की के कारण तो गाँव-महल्ले में मुँह दिखाना मुश्किल हो रहा है। एक अच्छा सुपात्र इस समय हाथ आ गया है, उसके साथ लड़की का ब्याह करेगी ?

दुर्गा ने कहा—दामाद तो मेरा ठीक हो चुका है, इसलिए और कहीं लड़की का ब्याह हो ही नहीं सकता।

शम्भू ने कहा—तब तो फिर कोई बात ही नहीं। किन्तु ऐसा सुपात्र वर बड़े भाग्यों से मिलता है, यह मैं तुझसे कहे देता हूँ दुर्गा। २०-२५ बीघे ब्रह्मोत्तर धरती, तालाब, बारा, धान की भरी बखारी, सब कुछ है; इसके सिवा लिखा-पढ़ा भी—

बात पूरी नहीं होने पाई, दुर्गा बीच ही में बोल उठी—नहीं दादा, और कहीं किसी तरह यह ब्याह नहीं हो सकता। बही साल बीतने भर की देर है; साल भर बाद वहीं लड़की ब्याह दूँगी।

फिर भी शम्भू ने कहा—लेकिन मेरी समझ में यही सामने के अगहन में लड़की का ब्याह कर देना बहुत जरूरी है :—

फिर प्रतिवाद करना निरर्थक जानकर "मुझे काम करना है" कहकर दुर्गा वहाँ से उठ गई। धीरे-धीरे यह प्रकट हुआ कि वह सुपात्र और कोई नहीं, ख़ुद हज़रत शम्भू बाबू की

मौजूदा औरत का बड़ा भाई है। स्त्री के मर जाने के कारण प्रायः छः महीने से साले साहब, बेकारी की हालत में, इधर-उधर मारे-मारे फिरते थे। इस हालत में उनका और अधिक दिन तक रहना कोई भी मुनासिब नहीं समझता था। खास कर घर में कई कच्चे-बच्चे होने के कारण एक सयानी लड़की ब्याह लाना बहुत ही जरूरी हो गया है।

इसी कारण शायद दुर्गा के बार-बार अस्वीकार करने पर भी यह सुपात्र एक दिन एकाएक अपने बहनोई के घर आकर उपस्थित हो गये। आते ही उनके सामने ज्ञानदा पड़ गई, और यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि हजरत लड़की को पसन्द करके ही अपने घर वापस गये। इसके बाद ही शम्भू-नाथ का स्नेह का अनुरोध बहन के ऊपर कठोर अत्याचार के रूप में प्रकट होने लगा। एक दिन उन्होंने स्पष्ट यह सूचना दे दी कि प्रियनाथ की ग़ैरमौजूदगी में इस समय वही बहन और भानजी के यथार्थ अभिभावक हैं, और आवश्यक होने पर इसी अगहन के महीने में वे जबरदस्ती अपने पसन्द किये हुए पात्र के साथ भानजी का ब्याह कर देंगे।

दादा के साथ वाद-विवाद करके दुर्गा ने भीतर जाकर लड़की की ओर नजर डाली तो उन्हें स्पष्ट ही मालूम हो गया कि उसने सब सुन लिया है। रोने से लड़की की आँखें फूल-कर लाल हो गई थीं। उसे खींचकर छाती से लगाकर दुर्गा ने कहा—मेरे जीते तुझे डर क्या है बेटी!

उन्होंने मुँह से अभयदान तो अवश्य किया, किन्तु डर के मारे उनका अपना ही हृदय भीतरी तह तक सूख गया था। इस ज़िले की तरफ़ ज़बर्दस्ती पकड़कर ब्याह कर लेना रोज़मर्रा की साधारण घटना है, यह दुर्गा से छिपा नहीं था।

मा की छाती में मुँह छिपाकर लड़की फफक-फफककर रोने लगी। मा ने उसके माथे पर हाथ रखकर देखा, बुख़ार की गर्मी में उसका शरीर फुँका सा जा रहा था। मा ने अपने आँचल से लड़की के आँसू पोंछकर पूछा—बुख़ार कब से है बेटी?

"कल रात से।"

"मुझसे कहा क्यों नहीं? आजकल भयानक मलेरिया की फ़सल है यहाँ।"

लड़की चुप हो रही; कुछ उत्तर नहीं दिया।

भावज के साथ अब तक दुर्गा ने किसी तरह की घनिष्ठता बढ़ाने की चेष्टा नहीं की थी। केवल उसका विकट चेहरा और उससे भी बढ़कर भयानक हँसी देख-सुनकर ही उनका जी जल उठता हो, यह बात न थी; बल्कि भावज की अत्यन्त कर्कश वाणी को भी वे सह न सकती थीं। देहात की औरतें स्वभाव से ही ज़रा ऊँची आवाज़ से बोलती-चालती हैं; किन्तु दुर्गा की भावज की साधारण बातचीत भी दूर से सुनने से जान पड़ता था कि वह किसी से झगड़ा कर रही है। इस पर तुर्रा यह था कि दुर्गा की भावज जैसी बोलने में तेज़ थी वैसी ही लड़ने में भी प्रवीण। किन्तु उसका एक गुण दुर्गा ने जान

लिया था—वह गले पड़कर किसी से लड़ना-झगड़ना नहीं चाहती थी। उसकी राह छोड़ देने से, न छेड़ने से, वह किसी को कुछ न कहती थी—लड़के-बालों में, घर-गिरिस्ती में लगी रहती थी, दूसरे की बात पर ध्यान न देती थी।

पहले आते ही दुर्गा ने अपनी भावज को रसोई वग़ैरह बनाने में सहायता देनी चाही थी। किन्तु भामिनी अर्थात् भावज ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि तुम दो-चार दिन के लिए आई हो ननदजी, तुम्हें कोई काम न करने दूँगी। मैं अपना भण्डारा और अपनी रसोई किसी और को नहीं सौंप सकती।

तभी से दुर्गा इस मामले में एक प्रकार से निश्चिन्त हो बैठी थीं।

आज देर हुई देखकर भामिनी ने द्वार पर आकर स्वाभाविक चीत्कार के साथ पुकारकर पूछा—आज क्या कुछ खाओ-पियोगी नहीं ननदजी? रसोई लेकर क्या मैं बैठी ही रहूँगी?

दुर्गा ने सिर उठाकर कहा—लड़की को बड़ा बुख़ार चढ़ा हुआ है भाभी। तुम लोग जाओ खाओ-पियो; हम मा-बेटी आज कुछ न खायँगी।

भावज ने कहा—लड़की के बुख़ार है, तो तुमको क्या हुआ? तुम क्यों नहीं खाओगी? और बुख़ार किसे नहीं आता? ले उठो तो आओ।

दुर्गा ने कातर-कण्ठ से कहा—नहीं भाभी, मुझसे खाने के लिए चलने को न कहो; लड़की को छोड़कर मेरे मुँह में कौर नहीं धँसेगा।

"तुम्हारी सब बातें अजूबा होती हैं!" कहकर भामिनी चली गई। रसोईघर के चौके में पहुँचकर वहाँ से फिर उसने कहा—बुखार है तो बैद को बुलाकर कोई काढ़ा बनाकर पिलाओ। मलारिया के बुखार में उपास कौन करता है? सभी खाते-पीते हैं। हमारे देश में फाँका-वाँका करने का पाठ किसी ने नहीं पढ़ा।

बस, वह अपना काम करने में लग गई।

तीसरे पहर भामिनी खुद एक कटोरा भर काढ़ा पकाकर ले आई, और ज्ञानदा से बोली—उठ तो बिटिया, ले यह काढ़ा पी ले। फिर चलकर ज़रा सा दाल-भात खा लेना।

मामी को ज्ञानदा बहुत डरती थी। बिना कुछ प्रतिवाद किये उठकर थोड़ा सा कसैला-कड़वा काढ़ा जैसे उसने पिया, वैसे ही क़य हो गई। ज्ञानदा फिर पड़ रही। दुर्गा उस समय वहाँ पर न थीं, क़य की आवाज़ कान में पड़ते ही वे झटपट दौड़ी आईं, और वहाँ का दृश्य देखते ही खड़ी रह गईं। मामी ख़फ़ा होकर आँगन में जाकर महल्लेवालों को सुनाकर कहने लगी—ऐसी राजसी मिज़ाज की लड़की लेकर हम ग़रीबों के घर आने की क्या ज़रूरत थी भला?

उसी दिन से ज्ञानदा का रोग दिन-दिन बढ़ने लगा। उसकी मामी भामिनी ने वह जो उस दिन कहा था कि "देहात में साँप वग़ैरह के काटने से कितने आदमी मरते हैं? जो कुछ मरते हैं, सो इसी रोंड़ मलारिया में। एक बार इसके

पकड़ लेने पर फिर जान नहीं बचती," सो इसकी सत्यता प्रमाणित होने में अधिक देर नहीं लगी। बहुत ही थोड़े समय के बीच ज्ञानदा एकदम खाट से लग गई।

उस दिन कातिक की संक्रान्ति थी। दुर्गा ने कोठरी में घुसकर जो दृश्य देखा, उससे उनको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा, उनकी भावज ज्ञानदा के सिरहाने बैठी उसके सिर पर हाथ फेर रही है। आश्चर्य का कारण था। एक तो घर-गिरिस्ती के ज़रूरी कामकाज छोड़कर ऐसे फ़ालतू काम करने के लिए भामिनी को फ़ुरसत ही कहाँ, उस पर पराई लड़की की इस प्रकार अयाचित रूप से सेवा करना दुर्गा को अपनी भावज की प्रकृति के विरुद्ध एक ऐसा विसदृश कार्य प्रतीत हुआ कि अपने भाई के द्वारा प्रस्तावित पूर्वोक्त विवाह की बात को तत्काल स्मरण करके आशङ्का से उनके रोएँ खड़े हो गये। उन्हे इसमें तनिक भी संशय नहीं रहा कि भावज की यह लीला उसी उद्देश्य की सिद्धि का प्रयत्न-मात्र है। क्योंकि दुर्गा ने यह बात पहले ही से स्वतः सिद्ध सी मान ली थी कि भामिनी ने ही अपने भाई के साथ ज्ञानदा का ब्याह करा देने के लिए स्वामी को नियुक्त किया है, और वही भीतर-भीतर उसे इसके लिए उभाड़ती है।

आज भामिनी ने स्वर को ज़रा धीमा और कोमल करके ही कहा—तारकेश्वर में जो बड़े डाक्टर रहते हैं, उन्हें बुला लाने के लिए तुम्हारे दादा को आज मैंने भेज दिया है ननदजी।

बुखार तो रोज़-रोज़ बढ़ता ही सा जा रहा है—यह तो अच्छा नहीं है।

दुर्गा ने अस्पष्ट स्वर में जो कुछ कहा वह साफ़ सुनाई नहीं पड़ा। क्योंकि डाक्टर के बुलाने का समाचार सुनकर भी वे हृदय के भीतर से प्रसन्न नहीं हो सकीं।

भामिनी अपनी गिरिस्ती के काम करने चली गई। ज्ञानदा ने तकिये के नीचे से एक चिट्ठी निकालकर मा से कहा—जवाब आ गया।

"कहाँ है, देखूँ—देखूँ!" कहकर मा ने उसे एक प्रकार से लड़की के हाथ से छीन ही लिया। किन्तु उसके बाद ही अपने असह्य आग्रह को दबाकर उस चिट्ठी को दोनों हाथों की मुट्ठी में लिये चुपचाप बैठी रह गईं। एक बार सोचा, खोलकर पढ़ूँ। फिर सोचा नहीं; यह ठीक नहीं। लडकी ने हाथ में दे ही दी तो क्या हुआ, मा होकर वे लड़की की चिट्ठी कैसे पढ़ सकती हैं?

उन्होंने धीमे स्वर में पूछा—अतुल ने क्या लिखा है इसमें?

ज्ञानदा इसी बीच करवट बदलकर लेट रही थी। उसने संक्षेप में इतना ही कहा—यहाँ आना उचित न था, यही सब लिखा है!

पत्र की ये दो बातें सुनकर ही मा की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने मन ही मन पूर्वोक्त वाक्य की आवृत्ति की—

"यहाँ आना उचित न था, यही सब लिखा है!" दुर्गा का हृदय माता के स्नेह से विगलित हो उठा। उन्होंने अतुल का मुख याद करके उसे असंख्य आशीर्वाद देकर मन में कहा—न जाने बचुआ का कितना आन्तरिक मान, कितनी मर्मभेदी व्यथा इन शब्दों के बीच छिपी हुई है! यहाँ आकर ज्ञानदा बुखार मे पड़ गई है—इसी से तो बचुआ ने उस दिन नाराज़ होकर कहा था कि इन लोगों की गङ्गा-यात्रा देखने कलकत्ते से आया हूँ! सच ही तो है।—मैं आप चाहे जो करूँ, चाहे जहाँ जाऊँ, वह दूसरी बात है। किन्तु लड़की को साथ लेकर मुझे यहाँ बीमारी के घर में आना कभी उचित न था। चाहे जितना बड़ा कष्ट होता, सब सहकर हमारा वहीं पड़े रहना ठीक था।

चिट्ठी के काग़ज़ को अपूर्व ममता के साथ मुट्ठी में लिये हुए आज उन्हें कितनी ही बातें याद आने लगीं—स्वामी की मृत्युशय्या पर अतुल का प्रतिज्ञा करना, वह महाप्रसाद देने के बहाने चूड़ियाँ लेकर दौड़े आना, ख़ास कर यहाँ आने के दिन अपनी सगी मौसी स्वर्ण के साथ उसका लड़ पड़ना। उस दिन अतुल कलकत्ते से क्यों दौड़ा आया था, यह रहस्य उसकी माता ने सुना है, पास-पड़ोस और महल्ले के लोगों ने सुना है, और अब तक प्रायः सभी लोग जान गये होंगे। आनन्द और गर्व से दुर्गा का मातृ-हृदय परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने मन ही मन कहा—काली-कलूटी लड़की है! मेरी काली-कलूटी

लड़की के गौरव और सौभाग्य को सब लोग आज देखें ! अरे कोयल भी तो काली है, भौंरा भी तो काला ही होता है !

उन्होंने लड़की से पूछा—अब कैसी तबीयत है बेटी ?

ज्ञानदा ने कहा—अब तो अच्छी है मा।

दुर्गा ने फिर पूछा—मेरे सम्बन्ध में कोई बात अतुल ने लिखी है ?

ज्ञानदा—पढ़कर देख न लो।

अब दुर्गा कौतूहल को सँभाल नहीं सकीं। खिड़की के पास उजेले में चिट्ठी खोलकर देखने लगीं। इतने बड़े काग़ज़ में सिर्फ़ दो लाइनें लिखी देखकर पहले तो उन्हें जान पड़ा कि लड़की ने जल्दी में कोई दूसरा ही काग़ज़ उठाकर दे दिया है। किन्तु उसके बाद ही सिरनामे में श्रीचरणेषु लिखा देखकर मन ही मन हँसकर उन्होंने कहा—इसी से तो लड़की ने चिट्ठी पढ़ने को दे दी है। यह तो मेरे ही नाम की चिट्ठी है।

चिट्ठी में लिखा था—"मैंने उसी समय कहा था कि वह जगह मलेरिया का डिपो है। ज्ञानदा को बुखार आने की ख़बर सुनकर दुःखित हुआ। आशा है, शीघ्र ही आरोग्य हो जायगी। हम लोग सब अच्छी तरह हैं। मेरा प्रणाम पहुँचे। इति।"

लड़की से पूछने में पहले तो दुर्गा ज़रा हिचकिचाईं, लेकिन मा का जी ठहरा, बिना पूछे भी नहीं रहा गया। लड़की के

पास बैठकर उसके रूखे उलझे हुए बालों में अङ्गुलि-सञ्चालन करते-करते धीरे से उन्होंने पूछा—हाँ बिटिया, जान पड़ता है, तुम्हारी चिट्ठी में अतुल ने ख़फ़गी ज़ाहिर की है ?

ज्ञानदा ने अकचकाकर मुँह फिराकर कहा—मेरी चिट्ठी और कहाँ है मा ? यही तो एक चिट्ठी उन्होंने तुमको लिखी है !

दुर्गा ने ज़रा हँसकर कहा—मैं उसे देखना नहीं चाहती बिटिया, मुझे तो सुनकर ही सुख होता है। उसने ख़फ़ा होकर तुमको चिट्ठी में बका-झका है, यह तो मैं समझ ही गई—

ज्ञानदा बीच ही में बोल उठी—नहीं अम्मा, मैं तुमसे सच कहती हूँ, उन्होंने अलहदा कोई चिट्ठी-पत्री मुझे नहीं लिखी, सिर्फ़ यही एक चिट्ठी आई है।

ज्ञानदा करवट बदलकर मुँह फेरकर सो रही।

"तो यही दो-तीन लाइनें लिखी हैं ? और कोई ज़िक्र नहीं ?" यह कहकर दुर्गा सन्न हो रहीं। उनकी जो उँगलियाँ अब तक लड़की के केशों के बीच अनेक प्रकार की विचित्र गतियों से विचरण करती फिरती थीं, वे भी एकाएक मानो काठ की तरह कठिन हो उठीं। इसी तरह बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहकर वे उठ गईं।

फिर पहले ही की तरह दिन बीतने लगे।

——

५

शुरू अगहन की ठण्डी हवा चल रही थी। दुर्गा की एक बचपन की सखी अपने मायके आई थी। आज दोपहर के वक्त लड़की की तबीयत ज़रा अच्छी देखकर दुर्गा अपनी सखा से मिलने को उसके घर गईं। राह में डाक के प्यादे को देखकर उसे बुलाकर उन्होंने पूछा—क्यों दासू भैया, अपने नाम की कोई चिट्ठी-पत्री मुझे नहीं मिलती?

दासू ने हँसकर कहा—चिट्ठी आती ही नहीं, तो फिर तुमको कहाँ से मिले दीदी?

दुर्गा ने सन्देह के स्वर मे पूछा—मेरे या मेरी लड़की ज्ञानदा देवी, किसी के नाम की क्या कोई चिट्ठी नहीं आती?

दासू ने कहा—आती तो मैं ज़रूर ही दे जाता बहन। बाँटनेवाला तो मैं ही ठहरा।

दुर्गा ने फिर भी कहा—ना दासू, अपने थैले को ज़रा अच्छी तरह ध्यान से देखो तो। सम्भव है, कोई चिट्ठी आज आई हो। तीन-तीन चिट्ठियाँ हज़म कर जाय, एक का भी जवाब न दे, मेरा अतुल तो ऐसा लड़का नहीं।

मगर दासू ने वृथा परिश्रम न करके कहा—नहीं दीदी, तुम्हारी कोई चिट्ठी नहीं है; आते ही तुम्हें मिल जायगी।

अब वह जाने के लिए उद्यत हुआ। दुर्गा ने रोककर फिर कहा—अच्छा दासू, यह भी तो हो सकता है कि चिट्ठी

तुम्हारे डाकख़ाने में ही पड़ा रह गई हो। पोस्टमास्टर तो हम लोगों का नाम नहीं जानते। हो सकता है, टेबिल के भीतर इधर-उधर कहीं दबी-छिपी पड़ी रह गई हो, तुममें से किसी ने देख न पाया होगा। मुझे तो यहाँ सभी लोग जानते हैं; मैं क्या ख़ुद जाकर एक बार अपने हाथ से खोज नहीं सकती।

दुर्गा की व्याकुलता देखकर दासू को दया आ गई। उसने कहा—खोज क्यों नहीं सकती हो दीदी; मगर तुम्हारा खोजना बेकार होगा। अच्छा, आज मैं ही लौटकर एक बार ख़ूब अच्छी तरह खोज करके देखूँगा। अगर मिलेगी, तो फ़ौरन् दे जाऊँगा।

अधिक समय नष्ट न करके डाकिया चल दिया।

दुर्गा देवी दुनिया भर के देवी-देवताओं के नाम हज़ारों तरह की मन्नतें मानती चलीं—हे दुर्गा मैया, हे काली माता, एक ही चिट्ठी खोजने से निकल आवे! इत्यादि।

ज्ञानदा की इतनी भारी बीमारी की ख़बर सुनकर भी अतुल जवाब न लिखे, भला यह किसी तरह विश्वास किया जा सकता है? उसने अवश्य ही पत्र लिखा है, बीच में कहीं कुछ गोलमाल हो गया होगा। दुर्गा इसी तरह के विचार कर रही थीं।

हाय री मनुष्य की आशा! सैकड़ों-करोड़ों सम्भव-असम्भव जल्पना-कल्पनाओं के बीच यह बात एक बार भी दुर्गा के ध्यान में न आई कि इस बीच अतुल के मन का भाव बदल

भी तो जा सकता है—कहीं ऐसा ही तो नहीं हुआ। उन्होंने एक बार भी यह नहीं सोचा कि अतुल की जो कामना एक समय अत्यन्त गुप्त रूप से, सम्पूर्ण आवरण के भीतर, निर्विवाद रूप से बढ़ उठी थी, उसे ऐसे असमय में खुले प्रकाश के बीच में खींच लाने से वह पलक मारते ही सूख जा सकती है! इस समय सैकड़ों विरुद्ध शक्तियाँ सजग, सावधान होकर दम भर में गला घोटकर उस इच्छा को मार डाल सकती हैं, यह एक बार भी दुर्गा देवी न सोच सकीं। मनुष्य ऐसा ही स्वार्थान्ध होता है।

दुर्गा अपनी सखी के घर से ज़रा जल्दी ही घर लौट आईं। लड़की की कोठरी में घुसते ही पहले उन्होंने यही पूछा—हाँ रे ज्ञानदा, दासू कोई चिट्ठी-पत्री दे गया है क्या?

लड़की ने कुण्ठित स्वर में कहा—नहीं तो मा।

आज दो महीने हुए, तीन-तीन चिट्ठियाँ भेजी गईं, पर उत्तर एक का भी नहीं आता। दुर्गा ने संशय से क्षुब्ध स्वर में कहा—तू सो गई होगी, किसी के न बोलने पर दासू चिट्ठी लौटा ले गया होगा। मैं घर में न थी, तुम क्या एक दिन भी दिन को ज़रा जाग नहीं सकतीं बिटिया?

यों कहकर दुर्गा देवी मुँह फुलाये लटकाये चली गईं। ज्ञानदा चुप बैठी रही। वह सोई न थी, बराबर जागती ही रही थी। परन्तु यह कैफ़ियत देकर उसने माता से बहस करना ठीक नहीं समझा। माता के सामने, नित्य उनके एक ही

प्रश्न का एक ही उत्तर देते-देते वह ख़ुद ही लज्जा के बोझ से दबी जा रही थी।

दुर्गा वैसे ही फिर लौट आईं। कोठरी के बाहर ही उन्होंने फिर लड़की से प्रश्न करते हुए कहा—क्यों, दासू ने तो मुझसे कहा था कि वह चिट्ठी खोजकर अवश्य ही दे जायगा ?

आज न-जाने क्यों, उन्हें निश्चय और विश्वास हो गया था कि अतुल की चिट्ठी अवश्य ही आई होगी।

लड़की ने कुछ जवाब नहीं दिया; वह एक मैले बिस्तरे में मुँह छिपाये पड़ी रही। किन्तु दुर्गा को इतने ही से सन्तोष न हुआ; उन्होंने भतीजे को डाकख़ाने भेजकर ख़बर मँगाई—मालूम हुआ, दासू चिट्ठी लेकर नहीं आया था।

इसके बाद के तीन-चार दिन उन्होंने पत्र पाने की प्रत्याशा मे मानो काँटों की शय्या मे लेटकर बेचैनी से काटे। दिन-रात पत्र आने की राह ताकती और छटपटाती रहती थीं। अन्त को इधर से हताश होकर उन्होंने अतुल की माता के नाम चिट्ठी लिखकर भेजी। अतुल की माता ने उसके उत्तर मे लिख भेजा कि अतुल अच्छी तरह है, और कलकत्ते में पहले ही की तरह लिखने-पढ़ने मे लगा हुआ है।

दुर्गा को उनकी चिट्ठी के भीतर उपेक्षा का स्वर ही सुनाई पड़ा। इसी तरह अगहन बीता, पूस भी चला गया, अतुल की कोई चिट्ठी न आई। माघ के बीचोबीच लड़की की

तबीयत अगर राम-राम करके जरा सुधरी, तो मा बीमार पड़ गई। इतनी बड़ी निराशा के धक्के को वे किसी तरह बरदाश्त नहीं कर सकीं।

इसके सिवा भावज के प्रति उनके हृदय में बेहद विद्वेष का भाव भरा हुआ था। भावज का उल्लेख करना होता था तो कभी घृणा के मारे उसे 'जला कुन्दा' और कभी 'ताड़का' (राक्षसी) ही कहती थीं। जितने ही दिन बीतने लगे, उतनी ही घृणा की मात्रा भी अपरिमित होने लगी। इसका एक और भी कारण था। वह यह कि ज्ञानदा के स्वभाव की माधुरी अथवा मिलनसारी के कारण ही शायद 'जला कुन्दा' अपने ढङ्ग से उसे प्यार करने लगी थी; उसकी सेवा-टहल और आदर-यत्न भी करती थी। किन्तु भावज के इस वात्सल्य के बीच एक उत्कट स्वार्थ की गन्ध पाकर दुर्गा भीतर ही भीतर विद्वेष-विष की ज्वाला से जलने लगीं।

उनके शरीर ने बड़े-बड़े दुःख-कष्ट उठाये थे। वे दुःख-कष्टों के बीच ही पली थीं, इसी से बड़ी से बड़ी मुसीबत अब तक झेलती गईं। पर अब और अधिक उनसे न सहा गया। माघ उतरते-उतरते वे खाट में पड़ गईं। लड़की ने रोकर कहा—अब यहाँ रहना ठीक नहीं मा, अपने गाँव लौट चलो। जो होना है, वहीं चलकर हो।

दुर्गा राज़ी हो गईं। इस समय यहाँ से जाने के लिए उनके सहमत होने का और कोई विशेष कारण न था, केवल

इसी 'जले कुन्दे' के आदर और आत्मीयता के फन्दे से निकलने के लिए ही उनका मन मानो दिन-रात भागने की चेष्टा करने लगा।

बहन के चले जाने के उद्योग की खबर पाकर शम्भू चटर्जी यात्रा के विरोधी बन बैठे। उस समय सबेरे के सात आठ बजे होंगे। शम्भू चटर्जी सन्ध्या-तर्पण वग़ैरह नित्यकर्म करके खड़ाऊँ खटखटाते हुए आ पहुँचे। आते ही पुकारा—दुर्गा!

दुर्गा दालान के आगे के चबूतरे पर खम्भे के सहारे बैठी मुँह धो रही थीं। ज्ञानदा उनकी सहायता कर रही थी। दादा के पुकारने पर दुर्गा ने उत्तर दिया—क्या है दादा?

शम्भू ने कहा—इस समय तो तुम्हारा जाना हो नहीं सकता।

दुर्गा ने कहा—क्यों दादा?

शम्भू ने कहा—क्यों दादा क्या? मैं क्या तुम्हारे कारण एक भले आदमी को ज़बान देकर झूठा बनूँगा? यह मेरी आदत में दाखिल नहीं।

दादा ने क्या ज़बान दी है, यह न जानने पर भी दुर्गा का हृदय धड़कने लगा। उन्होंने धीरे से पूछा—किस बात की ज़बान दे चुके हो दादा?

शम्भू ने कहा—ज्ञानदा के ब्याह की। अब अधिक दिन तक तो मैं लड़की को क्वाँरी रख नहीं सकता। इसी से अपने नवीनचन्द्र के साथ, इसी फागुन की पञ्चमी के दिन,

ब्याह की बातचीत पक्की कर डालनी पड़ी। वह लड़की को गहने वग़ैरह भी कुछ कम देने को नहीं कहता। मैंने देखा कि यह सम्बन्ध सभी तरह से बहुत ही अच्छा है। इसी से बातचीत पक्की कर ली।

यह हाल सुनकर दुर्गा के सिर पर गाज सी गिर पड़ी। रुआंसी होकर उन्होंने कहा—मुझसे बिना कहे-सुने तुमने क्यों ज़बान दे दी दादा? यह सम्बन्ध तो मैं अपने जीते जी न होने दूँगी।

शम्भू ने क्रोध करके कहा—न होने देगी कैसे? तेरे कहने से थोड़े कुछ होगा। मैं हूँ लड़की का मामा, अभिभावक; मैं जो कहूँ और करूँगा, वही होगा। तेरे कारण अपनी बात टाल देनेवाला मैं नहीं हूँ, यह जानती है तू! किसी के कहने-सुनने से अपना इरादा बदल दूँ, ऐसे बाप का बेटा ही मैं नहीं हूँ—समझी?

अब की दुर्गा सचमुच रोने लगीं। बोलीं—ना दादा, मैं मर जाने पर भी यहाँ अपनी लड़की का ब्याह न करूँगी। मेरी लड़की के लिए तुम तनिक भी चिन्ता न करो।

कहते-कहते उनका गला रुँध आया। वे अपनी बात पूरी न कर सकीं।

यह रोना-धोना देखकर शम्भू बहुत खीझ उठे। उन्होंने मुँह बनाकर क्रोध प्रकट करके कहा—देख दुर्गा, शुभ कर्म में बेकार पिन-पिन करना, रोना-धोना अच्छा नहीं। जो होने का नहीं है, जो मुझसे हो नहीं सकेगा—

बात पूरी न होने पाई, बीच ही में जले कुन्दे ने आकर रङ्गमञ्च पर दर्शन दिये। दोनों हाथ गोबर में सने थे—जान पडता है, वह उस समय भी गोबर को ठिकाने लगाने की व्यवस्था कर रही थी। आँगन मे आकर स्वामी को लक्ष्य करके वह अकस्मात् टूटी थाली की तरह बज उठी—खनखनाहट के स्वर मे कहने लगी—ज़रा सुनूँ तो, वह तुम्हारा ढूँढ़ा हुआ सुपात्र कौन है जी ?

स्त्री का रङ्ग-ढङ्ग देखकर शम्भू बाबू विचलित हो उठे। किन्तु मुख का साहस बनाये रखकर बोले—वह चाहे जो हो, तेरा उसमें क्या है ?

गोबर में सने हुए दोनों हाथ मटकाकर जला कुन्दा लगभग आधे आँगन मे नाच सी आई, फिर वैसे ही सुमधुर स्वर से आधे महल्ले को चौकन्ना करके उसने यों कहना शुरू किया—मामा हैं ! मामापन फैलाने आये है ! नवीन के साथ ब्याह करोगे ? तभी तो मय सूद के सौ रुपये अदा हो सकेंगे, क्यों न ? इसी लिए वह बड़ा अच्छा वर है, क्यों ? मेरा अपना भाई है, मैं उसे नहीं जानती, तुम जानते हो ? ताड़ी पीकर, गाँजे का दम लगाकर पाँच लड़कों की मा अपनी पहली जोरू को, आठ महीने के हमल की हालत मे, पेट मे लात मारकर जिसने मार डाला, उससे बढ़कर लायक़ वर और कौन होगा ? तुम्हें गले मे फाँसी लगाकर मर जाने के लिए रस्सी नहीं जुरती कहीं क्या ? धिक्कार है ! लानत है !

बहन और भानजी के आगे अपनी कलई खुल जाने के कारण शम्भू बाबू क्रोध के वेग को नहीं संभाल सके। पैर से खड़ाऊँ निकालकर जोर से चिल्लाकर बोले—चुप रह हरामज़ादी!

अबकी जला कुन्दा आपे से बाहर हो गई। वह ऐसा भयानक आकार बनाकर चिल्लाने लगी कि उस दृश्य को आँखों से देखे बिना केवल लिखा हुआ पढ़ने से समझ लेना सर्वथा असम्भव है। वह कहने लगी—ऐं, मुझे हरामज़ादी कहते हो? फिर जबान से यह गाली निकाली तो तुम्हारे इस मुँह में जलती हुई चूल्हे की लकड़ी जो न ठूँस दूँ तो मैं पाँचू घोषाल की लड़की ही नहीं। जबर्दस्ती लड़की का ब्याह कर दोगे? क्यों, तुम कौन होते हो? लड़की को लेकर दो दिन यहाँ कल से रहने के लिए वे आई हैं। तुम उन्हें रात-दिन डराने-धमकानेवाले कौन हो? तरकारी काटने की मेरी छूरी देख रक्खो। साले-बहनोई की एक साथ नाक काटकर तब जान छोड़ूँगी। मेरा नाम भामिनी है, यह याद रहे।

उस रणचण्डी की मूर्त्ति के सामने शम्भू की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। उनके मुँह से फिर एक अक्षर नहीं निकला। वे चुपचाप अपनी कोठरी में चले गये।

अब जले कुन्दे ने दुर्गा की ओर फिरकर कहा—यह क्या ऐसा-वैसा चमार है ननदजी! जब से तुम आई हो, तभी

से इस साँठ-गाँठ में लगा है कि किस तरह इस सोने की पुतली को फँसाकर बन्दर के हाथ में सौंप दूँ, और अपने ऊपर सौ रुपये का क़र्ज़ा और उसका सूद जो चढ़ा हुआ है, उससे मुफ़्त में छुटकारा पाकर अपनी फँसी हुई ज़मीन छुड़ा लूँ। मुआ उस पर कहता है, मैं मामा हूँ!

ज़रा दम लेकर फिर जले कुन्दे ने कहा—कहने से तुम मन में कष्ट पाओगी, यही सोचकर मैंने अब तक तुमसे नहीं कहा था, और इस समय भी न कहती, लेकिन इस चमार का असली रूप तुम पर प्रकट करने के लिए कहना ही पड़ा। उस दिन मैंने इससे कहा कि लड़की बुख़ार में पड़ी तड़प रही है, एक अच्छा सा डाक्टर लाकर उसे दिखा दो। इसने जवाब दिया—'मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं।' मेरे पास पूँजी के नाम एक चाँदी का गहना भर था, उसी को गिरौं रखकर मैंने डाक्टर को बुलाया और लड़की को दिखाया था। इस पर भी यह निर्लज्ज कहता है कि मैं लड़की का मामा हूँ; मेरा जो जी चाहेगा वही करूँगा। मुँहजला कहीं का! तुम डरती क्यों हो ननदजी, मेरे रहते तुम्हें डर क्या है? मैं आज ही तुम्हारे जाने का बन्दोबस्त किये देती हूँ, तुम घर जाकर अपनी लड़की का ब्याह करना। लड़की का ब्याह करके फिर जब तुम्हारा जी चाहे, तब चली आना।

दुर्गा खम्भे के सहारे जैसी की तैसी बैठी रहीं। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

कण्ठ-स्वर को कुछ कम करके जले कुन्दे ने अदृश्य स्वामी को लक्ष्य करके कहना शुरू किया—अनाथ जानकर इन लोगों पर जुलुम क्यों करते हो? सिर के ऊपर देखनेवाले भगवान नहीं हैं क्या? मैं कहती हूँ, जो कुछ अपना है वही लेकर रक्खो, खाओ-पियो। पराई रक़म लेकर अपना पेट मोटा करने की कोशिश करते हो? ऐसा करनेवाले का भगवान् कभी भला नहीं करते।

उसी दिन दोपहर को दुर्गा की यात्रा का सब बन्दोबस्त हो गया।

बैलगाड़ी पर चढ़ते समय दुर्गा ने जले कुन्दे के पैरों पर सिर रखकर आज सचमुच उन्हें आँसुओं से भिगो दिया। दुर्गा ने कहा—भाभी, तुम मेरी बड़ी भावज हो, इसलिए तुम्हें मैं आशीर्वाद तो नहीं दे सकती, किन्तु इतना अवश्य कहूँगी कि भगवान तुम्हें इसका बदला देंगे। मेरे कारण तुमने अपना एकमात्र गहना तक नष्ट कर डाला।

जले कुन्दे ने आदि से अन्त तक दाँतों के मसूढ़े बाहर निकालकर हँसते हुए कहा—गहना लेकर मुझे क्या करना है ननदजी? तुम यही कहो कि हाथों की चार चूड़ियाँ और माँग का सेंदुर लिये हुए स्वामी, पुत्र और गाय-ब्राह्मणों की सेवा-टहल करते-करते मर जाऊँ। लो, बीमारी का शरीर है, खड़े रहने से तबीयत ख़राब हो जायगी। गाड़ी पर सवार हो जाओ। ज्ञानो बेटी, मामा-मामी के यहाँ बहुत

कष्ट तुझे उठाने पड़े हैं; लेकिन फिर भी कभी आना, भूल न जाना।

अब उसने ज्ञानदा के हाथ में जबर्दस्ती दो रुपये रख ही दिये।

गाड़ी हँक जाने पर दुर्गा ने आखें पोंछते-पोंछते कहा—बिना जाने-बूझे तुम्हारे चरणों में बहुत अपराध किये जा रही हूँ भाभी, माफ़ करना।

जला कुन्दा फिर पहले की तरह सम्पूर्ण मसूढ़े खोलकर ज़ोर की हँसी नहीं हँस सकी। आँख से निकले हुए आँसू के बूँद को चट से पोंछकर उसने कहा—जले नसीब! अपराध तो सब हमी लोगों की ओर से हुए हैं ननदजी! ओ ज्ञानो बिटिया, मामा-मामी के ऊपर गुस्सा न करना। अगले साल आम-कटहल की फ़सल में तेरा न्यौता रहा—जमाई को साथ लेकर एक दफ़े ज़रूर आना बिटिया!

यह कहकर हाथ की पीठ से और दो बूँद आँसू जले कुन्दे ने पोंछ डाले।

——

६

खबर देने की कोई जरूरत न जानकर बिना चिट्ठी लखे ही एकाएक दुर्गा अपने गाँव में आ गई। ज्ञानदा का चेहरा देखकर उसकी बड़ी चाची तो हँसते-हँसते लोटपोट ही हो गई। बोली—अरे ओ ज्ञानो, ओ बिटिया, कैसी शर्म की बात है! तेरे ये सिर के सब बाल कैसे गिर गये?—ओ छोटी बहू, जल्दी आ, हमारी ज्ञानदा सुन्दरी को तो आकर तनिक देख जा!—अरे, देह की खाल भी क्या मामा-मामी ने जला-जलाकर काली कर डाली है तुम्हारी बिटिया?

ज्ञानदा चुपचाप गरदन झुकाये बैठी रही। छोटी चाची के आते ही उसने चटपट उठकर उसके चरणों में प्रणाम किया।

छोटी बहू देखकर काँप उठी। कहने लगी—एँ:! यह तुम्हारी क्या दशा हो गई बिटिया?

बड़ी चाची ने बिलकुल ही अत्युक्ति न करके कहा—पीपल पर की चुड़ैल बन आई है; रात को अँधेरे मे कोई देखे तो डर ही जाय।

यों कहकर वह खिलखिलाकर हँसने लगी। किन्तु आज छोटी बहू जिठानी की इस हरकत का साथ न दे सकी। वह और चाहे जैसी हो, सन्तान की मा तो थी न? लड़की के

इस कङ्कालसार पीले चेहरे की ओर देखकर उसकी माता का हृदय मानो सौ टुकड़े हो गया।

पास बैठकर ज्ञानदा के सिर पर और मुँह पर उसने हाथ फेरा। ज्ञानो के मुँह से रोग की कुल बातें सुनकर एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—तो फिर उसी दम तू क्यों नहीं चली आई बेटी? मैंने तो तुम्हें आने के लिए मना नहीं किया था। मँझली दीदी कहाँ हैं?

ज्ञानदा ने कहा—मा को तो राह में गाड़ा पर ही बुखार चढ आया था। उन्हें उनकी कोठरी में सुला आई हूँ चाची।

स्वर्णमञ्जरी ने सुनकर कहा—यह दशा क्यों न हो? हजार हो, मैं बड़ी जिठानी हूँ! इतना तेज दिखाकर चले जाना भगवान् कहीं सह सकते हैं?

छोटी बहू ज्ञानदा का हाथ पकड़कर उसकी मा को देखने के लिए उठ खड़ी हुई। बड़ी जिठानी की ये गले पड़कर कही गई कड़वी बातें आज उसे इतनी बुरी मालूम पड़ीं कि वह उन्हें बरदाश्त न कर सकी। उसने कहा—दीदी, दो-एक साल मधु-संक्रान्ति का व्रत कर डालो, जिससे दूसरे जन्म में जरा मीठी बोली-बानी हो।

स्वर्णमञ्जरी इस कठोर मन्तव्य से, जिसके सुनने की उसे जरा भी आशा न थी, क्रोध और अचरज के मारे एकाएक अवाक् हो गई। किन्तु उसके बाद ही तीव्र स्वर में गरजकर कह उठी—अभी ग़नीमत है छोटी बहू, अभी ग़नीमत है! इतन

दिनों बाद चाहे जिस तरह हो, मझली जिठानी को देखकर उसके शोक में हमदर्दी तुम्हारे जी मे उबल पड़ी! बाप रे, तुम कितने ढोंग रचना जानती हो।

छोटी बहू ने कुछ जवाब नहीं दिया। ज्ञानदा का हाथ पकड़कर वह दूसरे घर में चली गई। किन्तु वह उसका जाना ज्ञानदा के लिए एकदम काल हो गया। क्योंकि उसके और उसकी माता के विरुद्ध स्वर्णमञ्जरी के विद्वेष की यों ही हद न थी, उस पर आज छोटी बहू के इस सहानुभूति के व्यवहार ने और भी ग़ज़ब कर दिया।

हरिपालपुर मे रहते समय दुर्गा बुख़ार आने पर पड़ रहती थीं, और उसके उतर जाने पर चलती-फिरती थीं। हो सकता था तो स्नान-पूजा करके एक वक्त कुछ भोजन बनाकर खा-पी भी लेती थीं। किन्तु यहाँ आने पर और ही बात हो गई। पास-पड़ोस और महल्ले-टोले की औरतों ने दिन-रात सहानुभूति का सोता बहाकर उन्हें एकदम शय्या-शायिनी बना दिया।

नीलकण्ठ मुखर्जी की स्त्री मँझली बहू को देखने आईं तो मानो एकदम आसमान से गिर पड़ीं। कपार पर आँखें चढ़ाकर उन्होंने कहा—यह तुमने क्या किया मँझली—लड़की का ब्याह कब करोगी? लड़की इतनी सयानी हो गई है कि उसकी ओर देखा नहीं जाता।

दुर्गा ने थकी हुई आँखें बन्द करके क्षीण स्वर में कहा—क्या जानें बुआजी, कब भगवान् की कृपा-दृष्टि होगी।

बुआ ने कहा—सो तो जानती हूँ बेटी! लेकिन कोशिश भी तो करनी ही होगी। भगवान आप आकर तो लड़का सामने खड़ा नहीं कर देंगे?

दुर्गा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

मिनट भर प्रतीक्षा करने के बाद बुआ ने फिर कहा—अच्छा, बाप के घर गई थीं, वहाँ भाई ने कुछ ब्याह का सिलसिला नहीं लगा दिया? यहाँ देवर क्या कहता है?

"भगवान् जाने" कहकर दुर्गा करवट बदलकर लेट रहीं।

घण्टे भर के बाद ही आदरिणी आईं। उन्होंने चौखट के बाहर ही खड़े होकर भीतर झाँककर कहा—इस बखत कैसी तबियत है मेझली बहू?

ज्ञानदा पलँग के एक कोने में बैठी माता के पैरों के तलवे सहला रही थी। उसने उत्तर दिया—बुखार ने अभी तक नहीं छोड़ा बुआजी।

दुर्गा ने मुँह फेरकर आनेवाली की ओर देखा। फिर कहा—आओ, बैठो ननदजी।

"नहीं भाभी, बड़ी देर हो गई है, अब न बैठूँगी। मैं यह कहती हूँ कि चाहे जैसा जो कोई मिल जाय, उसी के साथ लड़की का ब्याह कर दो, अब अधिक देखभाल या छानबीन मत करो। कहना तो न चाहिए, मगर कहे बिना भी नहीं रहा जाता। पहले लड़की जरा देखने में अच्छी भी लगती थी, लेकिन अब तो मलेरिया के बुखार ने एकदम काले

कोयले का सा रङ्ग कर दिया है। हाँ री ज्ञानो, सिर के सामने के बाल क्या बुखार ही में गिर गये हैं ?"

ज्ञानदा ने केवल सिर हिला दिया, बेचारी सिर झुकाये चुपकी बैठी रही। आदरिणी ने कण्ठ-स्वर को अपेक्षाकृत कोमल करके कहा—सुनती हूँ, उस महल्ले के गोपाल भट्टाचार्य फिर ब्याह करनेवाले हैं। एक बार अनाथनाथ को भेजकर पता क्यों नहीं लगाती हो मँझली बहू ?

"अच्छा, कहूँगी" कहकर दुर्गा एक साँस छोड़कर फिर दीवार की ओर मुँह फेरकर लेट रहीं।

इसी तरह न-जाने कितने आदमी कितने प्रकार से हितोपदेश सुना गये। किन्तु जिनकी राह देखती हुई दुर्गा हर घड़ी कान खड़े किये रहती थीं, उन लोगों मे से किसी ने भी दर्शन नहीं दिये। न तो अतुल ही एक बार आया और न उसकी माता ही।

छोटी बहू के मन में दया-ममता का अभाव नहीं था; किन्तु वह बड़ी ही आलसी प्रकृति की थी। उस पर उसके गर्भ था। अतएव ज्ञानदा को बुलाकर जब स्वर्णमञ्जरी ने कहा—देखो, रोग का बहाना तो हमेशा चल नहीं सकता बिटिया। फिर मान लिया कि तुम्हारी मा रोग के कारण कुछ कर-धर नहीं सकतीं, लेकिन तुम तो सयानी पूरी औरत हो चुकी हो। तुम क्या सबेरे अपने चाचा के लिए रसोई नहीं बना दे सकतीं ?

कोठरी के भीतर लेटी हुई छोटी बहू अपनी जिठानी के इस उपदेश को अन्याय समझकर भी चुप रह गई। पराये

दु:ख में वह व्यथा का अनुभव अवश्य करती थी, किन्तु आप परिश्रम करके दूसरे के दु:ख को दूर करना या दुखिया से हमदर्दी दिखाना उसके लिए असाध्य था।

ज्ञानदा फ़ौरन् राज़ी हो गई। उसने धीमी आवाज़ में कहा—मैं ही कर दिया करूँगी चाची।

यद्यपि अभी तक ज्ञानदा को हर रोज़, रात को, बुख़ार हो आता था, तथापि माता की मानसिक यन्त्रणा बढ़ जाने के डर से उसने अपनी बीमारी को छिपा रक्खा था। खोखली निर्जीव देह को वह सबेरे बिछौने पर से ज़बर्दस्ती खींचकर उठाती थी—वास्तव में उससे उठा ही नहीं जाता था, तो भी वह एक बार हिचकी नहीं, ज़रा भी मुँह नहीं फुलाया।

दुखिया मा-बाप की लड़की होने पर भी ज्ञानदा अपने मा बाप की एकलौती सन्तान थी। उसका लालन-पालन माता-पिता ने बड़े प्यार-दुलार के साथ किया था। किन्तु बचपन ही से बड़े-बूढ़ों की आज्ञा को—वह चाहे उचित हो चाहे अनुचित—ज्ञानदा बिना सोचे-विचारे सिर आँखों से मञ्जूर कर लेती थी, उनकी सेवा करती थी, मुँह बन्द रखकर सब कुछ सहती थी। इन बातों में शायद संसार भर में उसकी जोड़ी नहीं मिल सकती थी।

किन्तु आज उसने जो भारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर ले ली, उसका गुरुत्व और कठिनाई और कोई भले ही न समझे, छोटी बहू अच्छी तरह समझती थी।

बड़ी जिठानी के इस अत्यन्त अनुचित हुक्म को सुनकर छोटी बहू भीतर ही भीतर जलने लगी, तथापि मुँह खोलकर कुछ रोक-टोक करने का साहस भी वह न कर सकी। डर यह था कि वह अगर इस बारे में कुछ बोलेगी तो, पारी की शर्त के माफ़िक़, उसे भी सबेरे उठकर रसोई करनी पड़ेगी।

दूसरे दिन यथासमय चाचा को नहाकर भीतर जाते देख ज्ञानदा थाली परोसकर उनके आगे रखने जा रही थी कि उसकी बड़ी चाची "हाँ-हाँ" कहकर मना करती दौड़ी हुई आ पहुँची। पास आकर बोली—कहाँ जाती है ज्ञानो?

ज्ञानदा ने सिटपिटाकर कहा—चाचाजी नहाकर आ गये हैं।

"तो फिर तेरा क्या?" कहकर स्वर्णमञ्जरी चिल्ला उठी। बोली—मैंने तुझसे थाली परोसकर ले जाने को मना नहीं कर दिया था? तेरे हाथ का परोसा मर्द कहीं खा सकते हैं?

दुर्गा वैसे ही उठकर अपनी कोठरी के सामने आ बैठी थीं। चिल्लाहट सुनकर डर के मारे सन्नाटे में आकर वे उधर ही ताकने लगीं।

छोटी बहू ने अपनी कोठरी से निकलकर पूछा—क्या हुआ दीदी? इतना चिल्लाती क्यों हो?

स्वर्ण ने किसी की ओर भ्रू-क्षेप न करके उसी वाक्यहीन जड़-सदृश निश्चल लड़की को लक्ष्य करके उसी सिलसिले में

इस प्रकार लेक्चर देना शुरू कर दिया—अपने हाथ से थाली परोसकर ले जाने से चाचा ख़ुश होकर तुझे सिर पर बिठाकर नाचने लगेगा, किसी राजकुमार को लाकर उससे तेरा ब्याह कर देगा—क्यों ? इतनी ही उमर मे मन वश मे करना तो ख़ूब सीख लिया है तूने !

यों कहकर लड़की के हाथ से थाली छीनकर स्वर्ण चली गई।

दुर्गा नित्य लगातार हज़ारों तरह की ज्वालाओं से जलते-जलते क्रमशः असहिष्णु होती जा रही थीं। इस समय लड़की को उद्देश करके रोते-रोते वे बरस पड़ीं। कहने लगीं—कल-मुँही, हरामज़ादी, बड़े-बूढ़ों की बात अगर नहीं सुनती, उनका कहा नहीं मानती, तो तेरी मौत ही क्यों नहीं हो जाती !

ज्ञानदा कुछ भी सफ़ाई न देकर चुपचाप रसोई घर मे चली गई। उसने एक बार भी यह नहीं कहा कि इस बारे में किसी ने उसे मना नहीं किया। सिर उठाकर प्रतिवाद करना शायद वह जानती ही न थी।

इस अत्याचार का प्रतिवाद कोई कर सकता था तो छोटी बहू। किन्तु वह अपनी कर्कशा जिठानी को ख़ूब पहचानती थी, इसलिए प्रतिवाद न करके चुप हो रही। स्वर्ण जैसी लड़का थी, वैसी ही आत्ममर्यादा के ज्ञान से शून्य भी। उसके मुँह पर ही उसके हज़ारों दोष दिखा देने अथवा प्रमाणित कर देने पर भी वह शरमिन्दा होना जानती ही न थी। ऐसा करने

से वह और भी निष्ठुर होकर लड़की पर अत्याचार करेगी, और उसे कष्ट पहुँचावेगी, यह छोटी बहू का अच्छी तरह जाना था। इसी कारण उसने चुपचाप ज्ञानदा के पीछे-पीछे रसोई-घर में आकर स्नेह और प्यार के साथ उसका हाथ पकड़कर कहा—दीदी का कहना क्यों नहीं माना बेटी ?

अब तक ज्ञानदा इतनी कठोर लाञ्छना सहती रही, किन्तु इस समय यह स्नेह का उलाहना उससे नहीं सहा गया। एक बार आँख उठाकर छोटी चाची की ओर दृष्टिपात करते ही वह टूटे हुए पेड़ की तरह उनके पैरों पर गिर पड़ी; बोली—मुझे तो किसी ने मना नहीं किया था चाची।

ज्ञानदा फफक-फफककर रोने लगी।

छोटी चाची ने पास बैठकर लड़की के आँसू अवश्य पोंछ दिये; किन्तु उसे यह न सूझ पड़ा कि कौन शब्द कहकर इस दुखिया लड़की को सान्त्वना दे, धीरज बँधावे।

इसी तरह इस श्रीहीन अभागिन अविवाहिता किशोरी के दिन बीतने लगे। घर में और बाहर, अपने और पराये सभी मिलकर हर घड़ी उसे केवल सताने और लाञ्छित ही करने लगे। इस अत्याचार से उसकी रक्षा करने की चेष्टा भी करने-वाला कोई माई का लाल न निकला।

— —

७

आजकल पकड़कर उठाये बिना दुर्गा का उठकर बैठना मोहाल था। और, लड़की के सिवा उन्हें उठाने-बिठानेवाला ही कौन था? इसी लिए हज़ार काम-काज करते रहने पर भी बीच-बीच में ज्ञानदा माता की कोठरी में आकर उनके पास बैठती थी।

आज सबेरे ज़रा सा अवकाश मिलते ही ज्ञानदा मा के पास आ बैठी थी, और धीरे-धीरे उनकी पीठ पर हाथ फेर रही थी। अकस्मात् एक अत्यन्त परिचित कण्ठ-स्वर सुनकर उसका कलेजा भीतर से धड़क उठा।

होली की छुट्टी में कॉलेज बन्द था, उसी अवसर मे अतुल घर आया था। दो-तीन महल्ले के सङ्गी-साथी लड़कों के साथ रङ्ग खेलकर जेब में गुलाब भरे "मौसी!" कहकर ऊँचे स्वर से पुकारने के बाद अतुल घर के भीतर आ गया।

आजकल दुर्गा एक तरह की ख़ुमारी में आधी जागती और आधी बेहोश-सी खाट पर पडी रहा करती थीं। अतुल की आवाज़ कान में पड़ने से मा कहीं सजग न हो उठें, इसी आशङ्का से ज्ञानदा व्याकुल हो उठी। वह ख़ूब जानती थी कि उसकी माता मन ही मन इसी आदमी की राह देखा करती

है। किन्तु अब इन दिनों उनका वह पहले का स्वाभाविक धैर्य, गाम्भीर्य और आत्म-सम्मान का भाव मानो क्रमशः क्षीण होता जा रहा था। उनकी बुद्धि और विवेचना-शक्ति भी मानो तेज़ी के साथ विकृत होती जा रही थी। उसकी जो माता कलह का आभास देखकर भी शङ्कित हो उठती थी, वही आजकल कलह-कोलाहल से भी मानो विमुख नहीं नज़र आती थी—यह बात उसने ध्यान देकर देख ली थी। अतएव अतुल के साथ उनकी भेंट होने पर एक अत्यन्त अशोभन कलह का होना अनिवार्य है—यह बात मानो उस लड़की के हृदय में स्थित अन्तर्यामी आत्मा ने अच्छी तरह जान ली थी।

क्या करने से यह मुशकिल टाली जा सकती है, यही सोचकर ज्ञानदा व्याकुल हो उठी। दबे पैरों उठकर वह किवाड़े बन्द करने जा रही थी, कि मा पूछ उठीं—क्यों ज्ञानदा, अभी अतुल कहीं बोला था न?

ज्ञानदा किवाड़े बन्द करके लौट आई। बोली क्या जाने मा; शायद वे तो नहीं हैं।

दुर्गा ने कहा—वाह! वही तो है। उठकर ज़रा देख तो सही।

ज्ञानदा ख़ूब जानती थी कि बहस करने से वे क्रुद्ध हो उठेंगी। इसी से धीरे-धीरे जाकर उसने झाँककर बाहर देखने की चेष्टा की, लेकिन कुछ भी देख नहीं पड़ा। बरामदे के

उस सिरे पर कई आदमियों की आवाज के बीच अतुल का भी स्वर उसे सुन पड़ा।

इतनी ही खबर लेकर वह लौट सकती थी; लेकिन आड़ से एक बार अतुल का चेहरा देख लेने का लोभ उसे ठेलकर और भी आगे ले गया।

वह चुपचाप आगे बढ़कर एक खम्भे की आड में खडी होकर देखने लगी। उसे देख पड़ा कि अतुल बड़ी मौसी के पैरों पर मुट्ठी भर गुलाल डालकर खड़ा हुआ हँस रहा है। महल्ले के और लड़कों ने भी उसकी देखादेखी ऐसा ही किया।

छोटी बहू वहाँ पर मौजूद न थी। कुछ व्यथा-सी होने के कारण वह अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकली थी। लौटने के लिए इच्छा करते-करते भी, बेहोशी की-सी हालत में, ज्ञानदा शायद कुछ देर तक जहाँ की तहाँ खड़ी ही रही थी। अकस्मात् वज्राहत की तरह होकर ज्ञानदा ने घूमकर देखा कि वह जिस बात के लिए डर रही थी, वही हो गई है—उसकी रोगशीर्ण दुर्बल माता किसी तरह गिरती-पड़ती लड़खड़ाती हुई उसी ओर आ रही हैं।

ज्ञानदा ने दौड़कर दोनों हाथों से माता को पकड़ लिया, और व्याकुल स्वर में कहा—उधर न जाना अम्मा, उधर न जाना। लौट चलो।

दुर्गा ने लाल-लाल आँखें करके पूछा—क्यों ?

ज्ञानदा बोली—'क्यों' का उत्तर मैं नहीं दे सकती। बस, तुम लौट चलो। उनकी तो कोई आशा ही नहीं है मा।

"मुझे छोड़ अभागी—छोड़ दे!" कहकर अमानुषिक बल से दुर्गा ने अपने को लड़की के बाहुबन्धन से मुक्त कर लिया। वे आगे बढ़ गईं। ज्ञानदा कठपुतली की तरह अनुसरण करके उनके पीछे जा खड़ी हुई। सभी ने आश्चर्य के साथ देखा कि जिनमें पग भर चलने की शक्ति नहीं थी; वही मँझली बहू आकर सामने खड़ी हैं!

उनके उस कङ्कालसार मुखमण्डल में उस समय भूखे बाघ की-सी दृष्टि दिखाई पड़ रही थी। उन प्रज्वलित अङ्गार-सदृश नेत्रों की ओर एक बार ताककर ही अतुल ने डर के मारे नज़र नीची कर ली।

दुर्गा ने कहा—अतुल, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने हमारा इस तरह सर्वनाश कर डाला?

अतुल जवाब ही क्या देता। अपराध के बोझ के मारे वह गरदन ही सीधी नहीं कर सका।

पर उत्तर देने का काम अतुल की ओर से स्वर्णमञ्जरी ने किया। उसके हृदय नाम का कोई पदार्थ तो था ही नहीं—वह इस बला से बिलकुल बरी थी। इसी से बहुत ही सहज में सिर उठाकर उसने कहा—क्यों, अतुल ने तुम्हारा क्या सर्वनाश किया है, ज़रा सूनूँ तो?

दुर्गा ने कहा—तुमको इसका क्या जवाब दूँ दीदी? जिससे मैंने यह बात कही है, वही जानता है कि उसने हमारा क्या सवनाश किया है।

स्वर्ण बोली—हमने घास नहीं खाई है मँझली बहू। हम भी सब समझती हैं। अच्छा, अतुल ने क्या तुम्हारी लड़की से ब्याह करने की लिखा-पढ़ी कर दी थी, जो इतने आदमियों के आगे उसे धिक्कारने—उसका पीछा करने—दौड़ी आई हो? जाओ, जाओ, अपने घर जाओ। बरस-बरस के पर्व के दिन—हँसी-खुशी मनाने के समय—मेरे घर में बैठकर उपद्रव मत करो!

"उपद्रव करने मैं नहीं आई हूँ दीदी!" कहकर अतुल की ओर देख उसे लक्ष्य करके दुर्गा ने कहा—जिस तरह हमारा यह एक साल बीता है अतुल, सो तुम नहीं जानते, केवल भगवान ही जानते हैं। लेकिन जो यही तुम्हारे मन में था तो तुमने उन्हें मरने के समय आशा क्यों दी थी? उसी समय तुमने अपने मन की बात क्यों नहीं साफ़-साफ़ कह दी?

अबकी स्वर्ण ने बिगड़कर कहा—देखो कहे देती हूँ, मेरे बच्चे को तुम कोसना नहीं, नहीं तो अच्छा न होगा। हमारी ज़िन्दगी में ऐसा कोई वचन देने का मालिक वह नहीं है।

इतने आदमियों के सामने यह प्रसङ्ग उठने से अतुल अपने को अपमानित समझ रहा था। अब मौसी का ज़ोर पाकर कह उठा—मैंने क्या ख़ुद ब्याह करने का वचन दिया

था ? मेरे पैर पकड़े थी, किसी तरह नहीं छोड़ती थी—पैरों पर गिरकर सिर फोड़ने लगी; बोली कि बाबूजी को अपने मुँह से ज़बान दे दो, वादा कर लो। क्या करता ? इतने लोगों के सामने मैं तो लज्जा के मारे मरा जा रहा था। इसी लिए पैर छुड़ाने की ग़रज़ से अगर मैंने एक कौशल से काम लिया, अपनी जान बचाई तो उसे क्या वचन देना कहेंगे ?

स्वर्ण ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—मैया रे, कैसी शर्म की बात है ! तू कहता क्या है अतुल ? लौंडिया ने आपसे तेरे पैर पकड़कर अपने मुँह से कहा कि मेरे साथ ब्याह कर लो ! ऐं ! घोर कलिकाल आ गया ! और क्या ?

अतुल ने कहा—सच कहता हूँ या झूठ, यह अपनी लड़की ही से न पूछ लो। मँझली मौसी आप ही कह दें कि उन्होंने ज्ञानो को मेरे पैरों पर सिर पटकते देखा था कि नहीं ! नहीं तो मैं ऐसी लड़की से ब्याह करना चाहता ? मुझे क्या गले में बाँधने को रस्सी और कलसी नहीं जुरती कि कहीं नदी में डूबकर जान दे दूँ ?

अतुल के साथी लोग दूसरी ओर मुँह फेरकर हँसने लगे।

दुर्गा इस अपमान से पागल-सी हो उठीं। उन्होंने चिल्लाकर कहा—अरे ओ निठुर ! ओ कृतघ्न ! तुझे रस्सी और कलसी मैं मोल ले दूँगी, तू जाकर मर—तेरा तो मरना ही भला है। जिस लड़की का तूने इतने आदमियों के सामने ऐसा भारी अप-

मान किया है, उसी लड़की ने कभी तुझे यमराज के मुँह से छीनकर जीवन-दान किया था! वह सब भूल गया तुझे?

दुर्गा का चीत्कार सुनकर अपनी व्यथा भूलकर छोटी बहू उठकर दौड़ी आई। उसने देखा, स्वर्णमञ्जरी उछलकर कह रही है—क्यों री अभागिन, तेरी इतनी मजाल! निकल मेरे घर से, अभी निकल!

ज्ञानदा खड़ी हुई थी; किन्तु वह एक अचेत पत्थर की मूर्ति बन गई थी। लज्जा, घृणा, अभिमान, अपमान, भला-बुरा कुछ भी उसके हृदय को स्पर्श करने में समर्थ न था। इन सब भावों से बिलकुल अतीत होकर वह चुपचाप खड़ी हुई टुकुर-टुकुर ताकती रही।

इस अदृष्टपूर्व मूर्ति की ओर देखकर छोटी बहू ने डर के मारे ज़रा-सा ठेलकर पुकारा—ज्ञानदा!

छोटी बहू ने अपनी कोठरी के भीतर से ही सब वृत्तान्त सुन लिया था।

ठेले जाने पर ज्ञानदा ने उत्तर दिया—क्या है छोटी चाची?

छोटी बहू ने कहा—अब क्यों खड़ी हो बिटिया? अपनी मा के घर ले जाओ।

"चलो मा" कहकर ज्ञानदा मा का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे उन्हें कोठरी के भीतर ले गई।

स्वर्ण बोली—छोटी बहू, देखी हिम्मत! इसी को कहते हैं बैने की चाँद को पकड़ने की इच्छा।

अतुल ने हँसने की नक़ल सी करते हुए दाँत निकालकर कहा—सुन लिया छोटी मौसी ? कैसी शर्म की बात है !

स्वर्णमञ्जरी ने फूटी काँसे की थाली की तरह गला बजाकर कहा—रत्ती भर की लड़की की यह लीला ! कैसा घोर कलिकाल है !

छोटी बहू ने ज़रा हँसकर कहा—घोर कलिकाल होने से ही रक्षा है दीदी ! और कोई जुग होता तो अब तक धरती माता लज्जा के मारे दो टुकड़े हो जातीं अतुल !

अब वह अपनी कोठरी की ओर चल दी।

इस व्यंग्य का असली मतलब न समझ पाने के कारण स्वर्णमञ्जरी ख़ुश होकर बोली—यही तो मैं भी कह रही हूँ छोटी बहू !

किन्तु अतुल के चेहरे पर मानो किसी ने स्याही पोत दी। छोटी बहू के कथन का अर्थ स्वर्ण के न समझ पाने पर भी वह समझ गया था। इसी से दम भर सन्नाटे में बैठे रहकर वह जब वहाँ से उठ गया, तब जान पड़ा कि इस होली के दिन किसी ने मानो अतुल के कुर्ते और धोती वग़ैरह कपड़ों में लाल रङ्ग डालकर और मुँह में कालिख पोतकर उसे छोड़ दिया है।

असल बात अब तक छिपी हुई थी, किन्तु आज प्रकट हो गई। पास-पड़ोस और महल्ले की हिताकाङ्क्षिणी स्त्रियों की कृपा से बहुत ही शीघ्र दुर्गा के कानों तक यह समाचार

पहुँच गया कि इसी घर में अतुल का ब्याह ठीक हो चुका है। अनाथनाथ की बड़ी लडकी माधुरी के साथ उसका ब्याह होनेवाला है। बिचवानी का काम ख़ुद स्वर्ण-मञ्जरी ने किया है, और लड़की देखकर अतुल ने उसे बहुत ही पसन्द किया है।

— —

८

माधुरी बाल्यकाल ही से अपने मामा के पास कलकत्ते में रहती और महाकाली पाठशाला में पढ़ती है। वह अँगरेज़ी, बँगला और संस्कृत की शिक्षा पा रही है। गाना-बजाना, कापट-गुलूबन्द वग़ैरह बुन लेना भी जानती है। और, शिव की मूर्ति बनाकर उसके आगे स्तोत्रपाठ करना भी उसे अच्छी तरह आता है। देखने में भी वह बड़ी ही सुन्दरी है।

अब की दुर्गा-पूजा के समय दो महीने के लिए माधुरी अपने बाप के घर आई थी, उसी समय ब्याह की बातचीत पक्की हो गई है। अतुल के समान दुर्लभ सुपात्र कहीं खोजने जाना नहीं पड़ा, वह ख़ुद आकर हाज़िर हो गया। यह अवश्य है कि इस मामले में स्वर्णमञ्जरी का बहुत कुछ हाथ रहा।

छोटी बहू के भाई वग़ैरह मालदार हैं। उनकी मा भी अभी ज़िन्दा हैं। उन्होंने लड़की के लड़का-बाला होने की ख़बर पाकर उसे ले आने के लिए अपना आदमी भेजा। उसके साथ माधुरी भी आई। उसने अपनी मँझली चाची को बहुत दिनों से देखा न था, इसलिए आते ही वह उन्हें प्रणाम करने गई।

"चिरञ्जीवी हो बिटिया!" कहकर आशीर्वाद देकर दुर्गा बड़ी देर तक माधुरी की ओर ताकती रहीं। एक तो वह योंही

सुन्दरी थी, उस पर उसके मामा-मामी ने उसे ख़ूब साज-सिंगार करके—अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने पहनाकर—भेजा था।

माधुरी की मामी कलकत्ते की लड़की ठहरी। किस तरह लड़कियों को सजाया जाता है, यह उसका ख़ूब जाना था। माधुरी के शरीर पर कुछ चुने हुए सोने के गहने थे। वह चुन्नटदार चौड़ी लाल कन्नी की धोती पहने थी। पीठ पर बिखरे बाल शोभा बढ़ा रहे थे। माथे में बिन्दी लगी हुई थी। दुर्गा का जी देखने से नहीं भरता था, पलक नहीं लगती थी।

एकाएक एक लम्बी साँस के साथ उनके मुँह से निकल पड़ा—"अहा! लड़की क्या है सोने की प्रतिमा है!" इसके साथ ही पैरों के पास बैठी हुई अपनी मलिन श्रीहीन कन्या की ओर देखकर उनकी आँखें मानो जल उठीं। करवट बदल-कर वे रूखे स्वर में कह बैठीं—और मेरे पेट से लड़की पैदा हुई है जैसे काली कुतिया!

घर में माधुरी के घुसते ही उसके रूप और सजावट की ओर देखकर ज्ञानदा आप ही मानो अपनी हीनता के सङ्कोच से धरती में धँस गई थी।

माधुरी ने ज्ञानदा से कहा—दिदिया, आओ, ज़रा बात-चीत करें।

इसके उत्तर में ज्ञानदा ने अस्पष्ट स्वर में जो कुछ कहा, वह अच्छी तरह कुछ समझ में न आया। किन्तु उतना सा शब्द

सुनकर ही दुर्गा तीखे स्वर में कह उठीं—यह काला मुँह लेकर बार-बार सबके सामने मत निकल, यहीं बैठी रह।

ज्ञानदा चुपचाप बैठी रही।

माधुरी के चले जाने पर दुर्गा ने, जान पड़ता है, बेहद जी की जलन के कारण ही दो-एक बार आः-ऊः किया। ज्ञानदा ने धीरे-धीरे कहा—ज़रा माथा दबा दूँ ?

"नहीं।"

"दबा ज़रा एक दफ़े—"

दुर्गा चिल्ला उठीं—अरे नहीं, नहीं, नहीं। जा, उठ जा, मेरे बिस्तरे पर से हरामज़ादी। तेरा मुँह आँखों तले पड़ते ही मेरी देह मानो जल-भुनकर ख़ाक हो जाती है!

अब उन्होंने कन्या को ज़ोर से पैर से ढकेल दिया।

ज्ञानदा बहुत सह चुकी थी, किन्तु यह लात उससे नहीं सही गई। चुपचाप पलँग से उतरकर नीचे फ़र्श पर पट पड़ गई और साथ ही साथ उसकी आँखों के जल से वहाँ की मिट्टी भीग गई।

वह दोनों हाथ सामने फैलाकर मन में कहने लगी—भगवन्! मैंने किसका क्या अपराध किया है, जो सभी की आँखों का काँटा हो रही हूँ? माना कि मेरे रूप नहीं है, कपड़े-लत्ते और गहने नहीं है, बाप नहीं हैं; किन्तु इसमें मेरा क्या दोष? मेरी यह रोगग्रस्त कङ्कालसार देह, यह शीर्ण पाण्डुर मुख जो और एक आदमी को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका, तो

इसमें मेरी क्या ग़लती है ? मेरा ब्याह करनेवाला कोई नहीं है, तो भी मेरी उमर बढ़ती ही जाती है—यह भी क्या मेरा अपराध है ? प्रभो ! मेरे दोष, मेरे अपराध अगर इतने अधिक हैं, तो फिर मुझे भी मेरे पिताजी के पास भेज दो। वे मुझे कभी इस तरह दुतकार नहीं सकते।

इतने में "ज्ञानदा" कहकर दुर्गा ने करवट बदली। मा के पुकारने से आँसू पोंछकर ज्ञानदा चटपट उठ बैठी।

"बीमारी की देह है, सीलन में क्यों लेटी हुई हो बिटिया ?" कहकर दुर्गा उत्कण्ठा और आशङ्का के मारे आप ही उठ बैठीं।

"ओह, तुम्हें मैंने बका है शायद बिटिया ?" कहकर पल भर में फ़ुर्ती से दोनों हाथ फैला दिये और कन्या को छाती से लगाकर दुर्गा फफक-फफककर ऊँचे स्वर से रोने लगीं।

आज शाम के बाद एकाएक अनाथनाथ ने दुर्गा देवी की कोठरी मे आकर उदास मुँह करके कहा—आज कैसी तबीयत है मँझली बहू ? पड़ी रहो—पड़ी रहो, उठो नहीं। हाँ, मैंने सुना है कि जो दवा दी जाती है उसे तुम खाना ही नहीं चाहतीं। ऐसा करने से तो फिर आराम होना कठिन है।

बात सच है। यद्यपि जो दवा दी जाती थी वह ऐसी थी कि उसके न देने से भी कोई हानि न थी तथापि दुर्गा देवी ने उसे भी एकदम छोड़ दिया था। उन्हें जीने की न आशा ही थी और न इच्छा ही। आवाज़ रोज़ बरोज़ जैसे

गढ़े में घुसती जाती हो, ऐसी क्षीण हो रही थी। ख़ूब नज़दीक आये बिना आजकल उनकी बात सुनाई ही न देती थी।

आज देवर के इस आकस्मिक घनिष्ठता जताने आने से दुर्गा अपने मन में शङ्कित हो उठीं। तो भी अव्यक्त स्वर में, देवर के पूर्वोक्त उलाहने के प्रत्युत्तर में, उन्होंने जो कुछ कहा उसे गरदन झुकाकर विशेष चेष्टा करके सुन लेने के बाद अनाथनाथ ने कहा—सो तो सच कह रही हो भाभी। विधवा होकर जीने में लाभ ही क्या! कोई भी हिन्दू-सन्तान तुम्हारे इस कथन का प्रतिवाद न करेगा। मगर बात यह है कि इस तरह आत्महत्या करना ठीक नहीं। जितने दिन की ज़िन्दगी है, उतने दिन संसार में रहना ही पड़ेगा, वह चाहे जिस तरह हो। तुम्हारे शरीर की जो दशा है, उसके देखते मुझे दुनियादारी की बातें तुम्हारे आगे करनी ठीक नहीं जान पड़तीं। लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं कि उनके बिना कहे भी नहीं बनता। इसी से कहता हूँ—आप भी देख रहा हूँ—कोशिश मे तो मैं किसी तरह की कोताही नहीं करता; लेकिन कैसी बदनसीब लड़की है कि किसी तरह कोई पात्र हाथ नहीं चढ़ता। छः-सात जगह बातचीत चली थी, मगर सभी जगह कोरा जवाब मिल गया। लड़की को देखकर कोई पसन्द ही नहीं करता!

दुर्गा कुछ भी नहीं बोलीं। ज़रा थमकर अनाथ बाबू फिर कहने लगे—मँझले दादा की मृत्यु के बाद तुम इस मेरे परि-

वार में आई हो कि नहीं—इसी लिए गड़बड़ मच रही है। नीलकण्ठ मुखर्जी को तो तुम पहचानती ही हो—वही हर एक के घर जाकर लोगों को भड़का रहा है। उसकी यही कोशिश हो रही है कि तुम्हारी आड़ लेकर किसी तरह मुझे नीचा दिखाया जाय। और, उन्हीं लोगों को दोष कैसे दिया जाय, हम लोग खुद ही लड़की की उमर देख रहे हैं। ब्याह की उमर की जो हद समाज ने बाँध रक्खी है, उससे अधिक उमर हो चुकी है। साथ ही यह बात भी है कि ये सब झंझट देहातों मे ही रह गये हैं, शहरों मे कोई इस ओर ध्यान ही नहीं देता।

इतना कहकर अनाथ ने ज़ोर से एक लम्बी साँस छोड़ी।

देवर देवता यह काहे की लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँध रहे है, उनकी इस नई चाल का रुख़ किधर है, यह समझ में न आने के कारण दुर्गा देवी चुपचाप बैठी उनकी ओर ताकती रहीं। किन्तु उनके शीर्ण मुखमण्डल पर एक अनिश्चित आशङ्का की छाया स्पष्ट देख पड़ने लगी।

एक बार खाँसकर तनिक इधर-उधर देखकर अनाथनाथ ने अब असल बात ज़ाहिर की। कहा—इस हालत में सच-मुच तुम्हारा कहीं और आना-जाना हो नहीं सकता। जाने को मैं कहता भी नहीं। लेकिन तुम तो जानती ही हो भाभी, मेरी लड़की भी ब्याहने योग्य हो चुकी है, उसका भी ब्याह अभी करना है। इसी से कहता हूँ—मुझे सभी ओर देखकर

चलना ज़रूरी है कि नहीं—इसी से इस समय ज्ञानो को किसी दूसरी जगह भेज दिये बिना काम नहीं चलता देख पड़ता। इस घर मे उसके रहने से गाँववाले ऐसा बखेड़ा खड़ा कर देंगे कि मेरी लड़की का ब्याह भी खटाई में पड़ जायगा।

दुर्गा का क्षीण स्वर दोनों होठों के भीतर ही मानो लीन हो गया। उन्होंने कहा—ज्ञानो कहाँ जायगी भैया?

अनाथ०—हरिपालपुर ही में तब तक न हो जाकर रहे।

दुर्गा—वहाँ यह कैसे जायगी? और वहाँ जाकर ही क्या होगा?

अब की अनाथ को क्रोध चढ़ आया। उसने बिगड़कर कहा—यह तुम्हारा अन्याय है भाभी। सिर्फ़ अपना ही बनता-बिगड़ता देखने से तो काम नहीं चलता; जिसके घर में, जिसके परिवार में रहती हो, जिसने बुरे वक्त में तुम्हारा साथ दिया, तुम्हें अपने घर में जगह दी, उसका भला-बुरा भी तो तुमको देखना चाहिए।

दुर्गा इसका कुछ जवाब न दे सकीं, केवल एक लम्बी साँस छोड़कर रह गईं। इस साँस से इतना काम अवश्य हुआ कि अनाथ ने स्वर को पहले की अपेक्षा कुछ कोमल करके कहा—इस अवस्था में लड़की को भेज देने से तुम्हें थोड़ा-बहुत कष्ट अवश्य होगा, यह मैं समझ रहा हूँ। लेकिन और उपाय ही क्या है? भाभी, सच तो यह है कि तुम्हारा भी इसमें क़सूर है। मैंने तुम्हारे दादा को ज्ञानो के ब्याह के

बारे में चिट्ठी लिखी थी। उत्तर में उन्होंने स्पष्ट ही लिख भेजा है कि हरिपालपुर में तो ज्ञानो के ब्याह का सब ठीकठाक हो गया था, तुम्हीं ने असम्भव आशा में पड़कर लड़-झगड़कर भरभण्ड कर दिया—लड़की को लेकर वहाँ से चली आईं। यह न करतीं तो आज मजे से—

मजे से क्या हो सकता, उसे अनाथ बाबू ने खोलकर नहीं कहा। किन्तु दुर्गा अच्छी तरह इस रहस्य को समझ गईं कि यह स्वार्थी और पराये हाथ का कठपुतला जीव एकाएक ज्ञानदा को अन्यत्र भेज देने का प्रस्ताव लेकर क्यों आया है। कुछ भी भार अपने ऊपर न लेकर, सब तरह के झंझटों से बचे रहकर, एक भी पैसा गाँठ से खर्च किये बिना इस भतीजी के ब्याह की जिम्मेदारी से छुटकारा पाने के सहज लटके का पता जब अनाथ को लग गया है, तब इस सुयोग को हाथ से निकल जाने देनेवाला आदमी ही वह नहीं।

अनाथनाथ के चले जाने पर थोड़ी देर बाद काम-काज खतम करके ज्ञानदा जब दुर्गा के पास आई तब उनकी दशा देखकर वह डर से चौंक सी पड़ी। दुर्गा के गड्ढों मे धँसे हुए रक्तशून्य दोनों नेत्र आज लाल होकर फूल उठे थे।

लड़की को देखते ही उनका रोने का वेग एकदम सहस्र-मुख हो उठा। इशारे से पास बुलाकर लड़की की छाती पर मुख रखकर माता आज एक छोटी सी बालिका की ही तरह फूल-फूलकर रोने लगी।

बहुत देर में जब रोने का वेग शान्त हुआ तब लड़की ने कहा—मुझे क्या तुम जानती नहीं हो मा, जो तुम यह सोच रही हो कि मुझे तुमसे अलग कर दिया जायगा? मुझे कोई भी तुमसे छुड़ा नहीं सकता। यह तो चाचाजी का घर नहीं है, मेरे बाप का घर है। हाँ, चाचा इतना कर सकते हैं कि खाने को न दें। सो जब वे ऐसा करेंगे तब मैं भी लज्जा को तिलाञ्जलि दे दूँगी और जिस तरह होगा—लोगों की मेहनत-मजूरी करके ही सही—तुम्हें खिलाऊँ-पिलाऊँगी। इतनी हिम्मत मुझमें है, इतना मैं कर सकती हूँ!

यों कहकर लड़की आज मा बन गई। मा को एक छोटी लड़की की तरह गोद में लिये ज्ञानदा बैठी रही। थोड़ी देर बाद दुर्गा को, शिथिल शरीर होने के कारण, सहज ही नींद आ गई। लेकिन लड़की बहुत रात बीतने तक जागती रहकर भी यह ठीक न कर सकी कि वह चाचा के हाथ खींच लेने पर किसकी और कौन-सी मेहनत-मजूरी करके अपना और मा का पेट पालेगी—उस दुर्दिन में उसका कौन सहायक होगा।

ज्ञानदा को घर से निकालकर हरिपालपुर भेज देने का प्रस्ताव छोटी बहू के कानों तक जब पहुँचा तब उसने स्वामी को एकान्त में बुलाकर कहा—तुम सठिया तो नहीं गये, जो बड़ी भावज की सलाह से ऐसे असमय में रोगी मा के पास से लड़की को जुदा करने की बात कह आये? क़साई लोग—जिनका पेशा ही हत्या करना है—भी तुम्हारी अपेक्षा अधिक दया-माया रखते होंगे।

जो हो, यह काम एकदम असम्भव ही था, और यही समझकर अनाथनाथ चुप्पी साध गये, नहीं तो इन बातों में स्त्री की बात मानने का इतना बड़ा दोषारोपण उनका बड़े से बड़ा शत्रु भी उनपर नहीं कर सकता था !

इधर स्वाभिमानिनी दुर्गा शायद इस मृत्यु के सिर पर सवार होने के समय भी लड़की को लेकर एक बार अपने भाई के पास हरिपालपुर चली जातीं, किन्तु वहाँ उस सुपात्र के मौजूद रहने का स्मरण करके, जिसने ५-६ बच्चों की जननी अपनी स्त्री को गर्भ की अवस्था में ही पेट में लात मारकर भव-बन्धन से मुक्त कर दिया है, उनका कलेजा काँप उठता था।

दूसरे दिन अनाथ बाबू को दुर्गा ने अपने पास बुला भेजा। आने पर उनके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर दुर्गा ने कहा—भैया, रिश्ते में अगर तुम छोटे और मैं बड़ी न होती तो आज तुम्हारे पैर पकड़कर यह भिक्षा माँगती कि भाई, तुम्हारा जिसके साथ जी चाहे उसके साथ लड़की का ब्याह कर दो, लेकिन उसे मुझसे इस अन्त समय में जुदा न करो।

यह कहकर ज्ञानदा का हाथ लेकर उन्होंने उसके चाचा के हाथ में दे दिया।

अनाथ ने अपना हाथ खींच लिया और कहा—दूसरे के कारण मैं समाज से अलग किया जा रहा हूँ। मैंने क्या इसके ब्याह की चेष्टा करने में कोई बात उठा रक्खी है मँझली बहू! लेकिन मैं क्या करूँ? चिता का मुर्दा भी तो इस

तुम्हारी लड़की से ब्याह करने को राज़ी नहीं होता !—अच्छा यह तो बताओ, तुमने अपनी वह कड़ों की जोड़ी क्या की ?

दुर्गा ने कहा—वह तो तुम्हारे दादा की तेरहीं के दिन ही बिक गई थी भैया ! अब कहाँ है ?

अनाथ ने हाथ उलटकर कहा—तो फिर मैं अब क्या कर सकता हूँ ? न एक भी पैसा पास से निकालोगी और न लड़की को ही छोड़ोगी। इसके मानी यह हुए कि मेरे सिर पर पैर रखकर मुझे मँझधार में डुबाना चाहती हो ! और क्या !

अब क्रोध से फूलते हुए अनाथनाथ चले गये।

उनके चले जाने पर दुर्गा देवी क्षण भर स्थिर होकर बैठी रहीं, इसके बाद अकस्मात् ज़ोर से लड़की का हाथ झकझोर-कर कह उठीं—बैठी क्या है, शाम हो गई, दिया न जलावेगी ?

अभी-अभी जो आलोचना हो गई है उसी की जलन से, जान पड़ता है, ज्ञानदा तनिक अनमनी हो पड़ी थी।

उसके कुछ उत्तर देने के पहले ही माता अत्यन्त कठिन भाव धारण करके कह उठी—मौत भी नहीं आती ! राजकन्या की तरह ऊपर से मुँह फुलाये बैठी है ! क्यों री, इतने धिक्कार मिलने पर भी तेरे प्राण क्यों नहीं निकलते ! यदु घोष का एक लड़का उस दिन तीन दिन के बुख़ार में ही मर गया, और तू साल भर से नित्य ज्वर के साथ जूझ रही है, लेकिन यम-राज ही तुझसे हार गये ! तू ऐसी बेहया है जो अब तक दुनिया को मुँह दिखाती है ! और कोई लड़की होती तो लाज

के मारे अब तक कहीं नदी-नाले में डूब मरती ! जा, जा, मेरी आँखों के आगे से हट जा चुड़ैल, ज़रा दम भर कल से बैठूँ तो। दिन-रात जोंक की तरह मुझसे चिमटी रहती है !

लड़की को ठेलकर दुर्गा करवट बदलकर लेट रहीं।

वास्तव में मा का कहना ही सच था कि और कोई लड़की होती तो केवल लज्जा और घृणा के मारे आत्महत्या कर लेती। इस तरह बहुत-सी लड़कियाँ आत्महत्या कर चुकी हैं। किन्तु इस लड़की को भगवान् ने मानो किसी गूढ़ कारण से धरती माता की तरह सहनशील बनाकर गढ़ा था।

ज्ञानदा चुपचाप उठकर नित्य के घर के काम-काज करने चली गई।

इतनी बड़ी लाञ्छना और अपमान से भी केवल क्षणमात्र के लिए आत्मविस्मृत होकर उसने इतना ही कहा—नहीं—मा, मरना मैं जानती हूँ ! केवल तुम्हारे कष्ट का ख़याल करके सब सहती और जीती हूँ।

घर में दीपक जलाकर और एक छोटा-सा दीपक हाथ में लिये वह तुलसीचौरा के पास गई। हिन्दुओं की लड़कियाँ बहुत बचपन से ही इस छोटे से वृक्ष को देवता समझकर पूजना सीखती हैं।

तुलसी के सामने पहुँचकर ज्ञानदा किसी तरह अपने को सँभाल नहीं सकी। गले में आँचल डालकर प्रणाम करने के बाद उससे उठा नहीं गया। दोनों हाथ आगे फैलाकर

रोती हुई वह साष्टांग प्रणाम करते-करते धरती में ही लोट गई।

वह कहने लगी—हे देवता! हे दयामय! इसी जगह तुमने मेरे पिताजी को अपने चरणों में स्थान दिया है, अबकी मुझे और मेरी दुखिया माता को भी अपनी गोद में ले लो, और बाबूजी के पास भेज दो! अब और अधिक हमसे सहा नहीं जाता।

—

६

चैत के महीने के आख़िरी कई दिनों में साइत अच्छी न होने के कारण छोटी बहू अपने बाप के घर नहीं जा सकी। यह महीना ख़तम होते ही उसका छोटा भाई अपनी बहन और भानजी को ले जाने के इरादे से आया।

आज अच्छा दिन है। खाने-पीने के उपरान्त यात्रा का मुहूर्त बना है।

इसी अवसर में अतुल भी अपने घर आया था। स्वर्ण-मञ्जरी ने आज अपने यहाँ उसका निमन्त्रण किया था।

दोपहर के समय अतुल तथा माधुरी का मामा, दोनों भोजन करने बैठे। स्वर्णमञ्जरी पास बैठकर उन्हें भोजन कराने लगी।

उसने जान-बूझकर शौक़िया परोसने का काम माधुरी को सौंपा था। किन्तु रसोईं की बहुत-सी सामग्री ज्ञानदा से ही सबेरे चुराकर बनवा ली गई थी। बाहर का कोई अगर कभी इस बारे मे पूछ बैठता था तो स्वर्णमञ्जरी बिना किसी सङ्कोच के यह सफ़ेद झूठ कह देती थी कि वाह जी! यह कैसी बात! उस छुकरिया को तो हम अपनी रसोईं के भीतर पैर ही नहीं रखने देते।

अतएव किसी के आगे थाली परोसना ज्ञानदा के लिए एकदम निषिद्ध था। इसके सिवा वह आप अपनी लज्जा

के मारे किसी के सामने नहीं निकलती थी। जहाँ तक हो सकता था, घर के बाहर के सभी लोगों की नज़र से अपने को छिपाये ही रहती थी।

अतुल के साथ माधुरी का ब्याह होनेवाला था। इसी से यह सर्वाङ्गसुन्दरी लड़की सारे शरीर में सुन्दर सजावट करके और दुनिया भर की लज्जा लपेटकर अनाड़ी हाथों से जिस समय अतुल के आगे परोसने जाकर ग़लती पर ग़लती कर रही थी, और बड़ी चाची स्वर्णमञ्जरी स्नेह-सहित उलाहने के स्वर में कभी 'कलमुही', कभी 'अभागी' आदि कहकर कभी हँसकर और कभी मसखरी करके उस ग़लती का संशोधन करती जाती थी—अर्थात् माधुरी के एतत्सम्बन्धी अनाड़ीपन को हँसी में टाल रही थी—उस समय दुनिया भर से अनादर पानेवाली और एक लड़की (ज्ञानदा) उसी (माधुरी) के लिए रसोईघर के एक एकान्त कोने में बैठकर सिर झुकाये सब तरह की भोजन-सामग्री क़ायदे से लगाकर सजा-सजाकर रखती और उसे उठा-उठाकर देती जा रही थी।

स्वर्ण ने बातों-बातों में माधुरी के ब्याह की बात जो छेड़ी तो वह वहाँ से भाग खड़ी हुई और रसोईघर में जा पहुँची।

ज्ञानदा ने पूछा—क्या चाहिए बहन ?

माधुरी—कुछ न चाहिए दीदी। मुझसे अब यह क़वायद न होगी।

बस, वह हाथ का थाल धम से ज़मीन पर डालकर वहाँ से निकलकर भाग गई।

इसी बीच स्वर्णमञ्जरी ने ज़ोर से पुकारकर कहा—ज़रा सा नमक तो दे जा बेटी।

लेकिन नमक देने के लिए माधुरी का कहीं पता न था।

स्वर्ण ने फिर दम भर बाद पुकारा—कहाँ गई, तेरे छोटे मामा खाने को बैठे हैं, जल्दी नमक दे जा।

फिर भी माधुरी रसोईघर मे लौटकर न आई। तब स्वर्णमञ्जरी ने क्रोध करके ज़ोर से पुकारकर कहा—क्या कोई नहीं सुनता! ये लोग क्या योंही चौके से उठ जायँगे?

इतने पर भी जब माधुरी न आई, तब ज्ञानदा ने चुपके बैठे रहना मुनासिब न समझा। उसने सोचा, नमक तो ऐसी चीज़ है जो हाथ से बिना छुए ही परोसा जा सकता है। इसी से शायद यह आज्ञा उसी के ऊपर हुई है। तब मैली, सौ जगह से फटी और सिली हुई धोती से सब अङ्गों को बड़ी सावधानी से ढककर नमक हाथ मे लेकर वह धीरे-धीरे दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गई।

दोनों अतिथियों ने यद्यपि ज्ञानदा को नहीं देख पाया, तथापि स्वर्णमञ्जरी की नज़र पड़ गई। उसने दो बार नीचे से ऊपर तक उसे देखकर धीमे पर कठोर स्वर में पूछा—तुमसे लाने को किसने कहा था? माधुरी कहाँ है?

ज्ञानदा ने चौके के भीतर ही से बहुत महीन आवाज़ में कहा—क्या जाने, कहाँ गई।

स्वर्णमञ्जरी बोली—इसी से तुम सनाथ करने आई हो? एक बात के लिए तुमको कितनी दफ़े मना करना होगा? हज़ार बार कह चुकी कि तुम्हारा मुँह देखने से सात पीढ़ियाँ नरक में गिरती हैं—मेरे सामने तुम न आया करो। आज अतुल खाने के लिए आया है कि नहीं, इसी से तुम्हारा उसके सामने हाज़िर होना ज़रूरी है! नमक का बरतन वहाँ रख-कर जाओ।

बरतन रखकर ज्ञानदा चली गई। वह वहाँ से जीवित इसी लिए जा सकी कि धरती माता ने दो टुकड़े होकर उसे अपने उदर में स्थान नहीं दिया!

स्वर्ण ने ख़ुद उठकर नमक परोस दिया।

फिर अपनी जगह पर बैठकर अतुल की ओर देखकर कहने लगी—तू तो मर्द बच्चा ठहरा। तुझे शर्म काहे की है, जो इस तरह सिर झुकाकर भोजन कर रहा है? अच्छी तरह सिर उठाकर खा।

माधुरी के मामा ने पूछा—यह लड़की कौन है?

स्वर्ण ने ज़रा मुसकराकर कहा—कोई नहीं है, तुम लोग भोजन करो।

किन्तु अतुल के लिए सब खाना स्वादहीन हो गया। पूरी का कौर किसी तरह उसके गले के नीचे उतरता ही न था। उतरता कैसे? आज वह माधुरी को देखकर उसके रूप पर रीझ अवश्य गया है, किन्तु ज्ञानदा को भी तो वह अच्छी

तरह जानता था। इस समय भी ज्ञानदा उसे प्यार करती है या उससे घृणा करती है, यह यद्यपि वह ठीक ठीक जानता नहीं था, तथापि एक दिन वह उसी को प्राणों से बढ़कर चाहती थी, इस बात को वह अच्छी तरह जानता है। किन्तु उस ज़माने में भी उसने कभी गले पड़कर उसके सामने आने की कोशिश नहीं की। और, आज वह वही करने आई है, इतने बड़े निर्लज्जता के अपवाद पर अतुल इतनी जल्दी कैसे विश्वास कर लेता ?

तीसरे पहर छोटी बहू अपनी लड़की को लेकर बाप के घर चली गई। किन्तु जाते समय उसने मँझली जिठानी से मुलाक़ात नहीं की। केवल दम भर के लिए रसोई-घर में घुसकर ज्ञानदा के हाथ में दस रुपये का नोट रखकर मानों चोर की तरह भाग खड़ी हुई; खड़े होकर उसका प्रणाम तक अच्छी तरह ग्रहण नहीं किया।

घर के भीतर केवल एक आदमी ही ऐसा था, जो इस लड़की के अन्तस्तल तक देख पाता था। वह छोटी बहू भी आज न-जाने कितने दिनों के लिए दूसरी जगह चली गई।

छोटी बहू के रहने से भी ज्ञानदा का कुछ विशेष उपकार न होता था। किसी की व्यथा में हमदर्दी करना और उसकी व्यथा को दूर करना एक बात नहीं है। किसी की व्यथा को दूर करने के लिए सचेष्ट होकर काम करना सभी का काम नहीं है। तथापि छोटी चाची को चले जाते देख-

कर इस लड़की का हृदय आज घने अन्धकार से परिपूर्ण हो गया।

वैशाख आधा बीत जाने पर एक दिन अनाथनाथ के आफ़िस जाने के समय बड़ी बहू स्वर्णमञ्जरी मुख में दुनिया भर की चिन्ता की छाप लेकर उनके सामने आकर खड़ी हो गई।

अनाथ बाबू ने डरकर कहा—क्या हुआ भाभी ?

स्वर्ण ने कहा—तुम यह कर क्या रहे हो भैया ? मँझली बहू का तो अन्तकाल उपस्थित है।

अनाथनाथ ने हाथ का हुक्का नीचे रखकर मलिन मुख से कहा—कहती क्या हो ? कहाँ, मुझे तो इसकी कुछ भी ख़बर नहीं !

स्वर्ण ने कहा—ना, ना, यह बात नहीं है। आज ही वह मरने नहीं जा रही है। किन्तु मैं यह कहे देती हूँ कि अब वह अधिक दिन न जियेगी। बहुत जिये तो दस-पन्द्रह दिन। इसके बाद छः महीने या साल भर तक लौंडिया (ज्ञानदा) का ब्याह नहीं हो सकेगा। किन्तु हमारी माधुरी का ब्याह जल्दी ही हो जाने में कुशल है। मैं इसी असाढ़ में उसका ब्याह कर दूँगी, किसी की बात नहीं सुनूँगी। ऐसा लड़का चिराग़ लेकर खोजने से भी नहीं मिलेगा। इसके सिवा सबसे बड़ा सुबीता तो यह है कि एक पैसा भी देना नहीं पड़ेगा। लड़के ने ख़ुद देखकर हमारी माधुरी को

पसन्द किया है। वह उसके रूप-गुण पर रीझ गया है। उसकी मा अब यह नहीं कह सकती कि मैं यह लूँगी, वह लूँगी; यह न होगा तो काम नहीं चलेगा। अन्त को देर करके क्या मैं अपने हाथ से ऐसा मौक़ा जाने दे सकती हूँ।

अनाथ ने डरकर गरदन हिलाते हुए कहा—ना, ना, यह कहीं हो सकता है! तुम मेरे घर की मालकिन हो, सब कुछ करने धरनेवाली तुम्हीं तो हो! तुम्हारी ही तो लड़की है। तुम अपनी लड़की अपनी बहन के लड़के के साथ ब्याहोगी। चाहे जब और चाहे जिस तरह तुम यह काम करो। मैं इसमें चूँ नहीं करूँगा बड़ी भाभी!

स्वर्णमञ्जरी ने गर्व के साथ कहा—सो तो मैं ख़ूब जानती हूँ कि तुम मेरी बात नहीं टालोगे। कभी कोई मेरी बात तुमने आज तक नहीं टाली। तुम मेरे वैसी प्रकृति के देवर ही नहीं हो। इसी से तो कहती हूँ कि अब जो मैं कहूँ वही करो। अब और अधिक सोच-विचार न करो; चाहे जिस तरह हो, पकड़-धकड़कर इस बला को अपने घर से पहले निकाल बाहर करो। यह काम किये बिना माधुरी का ब्याह किसी तरह न हो सकेगा। ऐसे ही महल्ले-टोले के नटखट औरत-मर्द तरह तरह की बातें करते हैं, उस पर मँझली बहू को अगर कुछ हो गया तो फिर बड़ी गड़बड़ में पड़ जाना होगा। मन में अच्छी तरह समझ लो, वह (ज्ञानदा) तुम्हारे घर का एक मुर्दा है। मुर्दे को घर से

निकाल बाहर करो, नहीं तो वह पड़े-पड़े सड़कर ऐसी बदबू फैलावेगा कि घर में रहना कठिन हो जायगा।

बड़ी भावज की नसीहत पर ग़ौर करते हुए अनाथ बाबू अपने दफ़्तर को गये। और, दूसरे ही दिन से, बक़ौल स्वर्णमञ्जरी के, घर का मुर्दा बाहर फेंक आने के लिए दौड-धूप करके ऐसे दो-चार आदमी पकड़-पकड़कर लाने लगे, जो ख़ुद घाट पर का मुर्दा हो रहे थे, अथवा जिनका परिचय अपने मुँह से देने में स्वयं स्वर्णमञ्जरी को भी दो-चार बार हिचक-कर लार घूँटनी पड़ती।

उस दिन दोपहर को बहुत दिनों के बाद स्वर्णमञ्जरी ने आकर दुर्गा को दर्शन दिये। बोली—आज कैसी तबीयत है मँझली बहू?

दुर्गा ने कष्ट से करवट बदलकर हाथ को ज़रा उलटाकर कहा—तबीयत अच्छी ही है। अब चलने-चलाने का समय है दीदी। यही आशीर्वाद करो कि और अधिक पड़े-पड़े भोगना न पड़े।

स्वर्णमञ्जरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा—ना, ना, यह क्या कहती हो बहू? डर काहे का है? अच्छी हो जाओगी।

दुर्गा चुप हो रहीं। इस कथन का उन्होंने कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

तब स्वर्णमञ्जरी ने काम की बात छेड़ी। कहा—हाँ, मैं यह कहने आई हूँ कि लड़की सयानी ठहरी, इसलिए वर भी

बिलकुल छोकरा होने से भी तो अच्छा नहीं मालूम होगा मँझली बहू। है कि नहीं? वर की उमर कुछ ज्यादा है, अच्छी है। उसके मा-बाप नहीं हैं, इसी से वह आप उस वक्त अपने गाँव मगरा से लड़की को देखने आवेगा। अपने आदमी से कहला भेजा है।

कहना न होगा, अगर किसी के बाप-मा वग़ैरह अमर न हों, तो जिस उमर के पात्र की बातचीत स्वर्ण कर रही थी, उस उमर में किसी के मा-बाप ज़िन्दा नहीं रह सकते।

स्वर्ण कहने लगी--अब मैया काली ऐसी कृपा करें कि लड़की को देखकर वह पसन्द कर ले। तभी तुम्हारे छोटे देवर की सारी दौड़-धूप सफल होगी। इसके बाद देने-लेने की बात है। सो मैं कहती हूँ—

बात पूरी भी न होने पाई, दुर्गा आग्रह के मारे बीच ही में उठकर बैठ गईं और आँखों मे आँसू भरकर जिठानी की ओर देखती हुई कहने लगीं—"आशीर्वाद करो दीदी, यहाँ की बातचीत न उचटे। मैं देखकर मर सकूँ"- कहते-कहते उनकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

स्वर्ण ने कहा—आशीर्वाद क्यों न करूँगी मँझली बहू? मैं तो दिन-रात ठाकुरजी से प्रार्थना करती हूँ कि हे नारायण, चाहे जिस तरह हो, लड़की का कहीं ठिकाना लगा दो! सो लड़की का ब्याह तुम देखोगी क्यों नहीं मँझली बहू? मैं कहती हूँ, तुम दामाद का मुँह देखकर तब—

दुर्गा ने चुपचाप आँचल से आँसू पोंछे। स्वर्ण ने एक हाथ से चुटकी बजाकर ज़रा इधर-उधर करके कहना शुरू किया—बेचारा अनाथ कई बच्चों का बाप ठहरा। सुनने ही भर को डेढ़ सौ रुपये महीने में मिलते हैं। एक पैसा भी खर्च से नहीं बचता। मैं तो सब जानती हूँ! अपनी ही लडकी का ब्याह न-जाने किस तरह करेगा। किस तरह इस काम से छुटकारा मिलेगा, इसी सोच में मैं सूखी जा रही हूँ! उस पर ज्ञानो के ब्याह का खर्च भी उसी के सिर ठहरा। तुम तो सभी समझती हो मँझली बहू। सो अनाथ उस दिन कहता था—शर्म के मारे .खुद अपने मुँह से तो कुछ तुमसे कह नहीं सकता—हाँ, सो कहता था कि ज्ञानो के ब्याह का खर्च चलाने का एक ही उपाय देख पड़ता है। वह यही कि इस घर में तुम्हारा जो हिस्सा है वह कहीं रेहन रख दो। तुमको और कुछ झञ्झट नहीं करना होगा, सिर्फ़ रेहननामे पर अँगूठे की एक छाप लगा देनी पड़ेगी। खाली साख पर तो कोई किसी को रुपये आजकल देता नहीं है। यह कल-जुग का ज़माना ऐसा बुरा है कि तुम मरो चाहे जियो, कोई तुम पर विश्वास नहीं करेगा—

दुर्गा फ़ौरन् बोल उठीं—मैं और कितने दिन जियूँगी दीदी; तुम लोग मुझसे जो कुछ करने को कहोगे, वही मैं करूँगी। सिर्फ़ इतना ही खयाल तुम लोग रखना कि मेरी दुखिया लड़की ससुराल में भी दुख ही न पावे।

"ना, ना, दुख कैसे पावेगी मँझली बहू ? बाप और चाचा, मा और चाची में फ़र्क़ ही क्या है ? जो यह बात न होती तो मैं ही ज्ञानो के सोच में खाना-पीना छोड़कर रात-रात भर जागकर ही क्यों बिताती ? मेरे लेखे जो ज्ञानदा है वही माधुरी है। बेटी ज्ञानो, उठकर अपनी मा के आँसू तो पोंछ दे। सिरहाने बैठकर ज़रा दो घड़ी पङ्खा झल दे।"

इतना कहकर, एक साथ आशा और भरोसा देकर, दुर्गा का घर का हिस्सा हड़प लेने का जाल बिछाकर स्वर्णमञ्जरी उठ खड़ी हुई।

आज बहुत दिनों के बाद दुर्गा के मृत्यु-मलिन मुख पर कुछ आनन्द की आभा दिखलाई दी। लड़की के हाथ से पङ्खा खींचकर अपना शीर्ण हाथ उसके मस्तक और मुख पर फेरती हुई उन्होंने स्नेहपूर्ण स्वर मे कहा—यहीं पर लेटकर ज़रा सो तो रहो बेटी।

दुर्गा ज़बरदस्ती लड़की को छाती से लगाकर कहने लगीं—ऐसी अभागिन के पेट से पैदा हुई तू बेटी कि इसी उमर में मेहनत और सोच करते-करते तेरे शरीर की यह दशा हो गई ! अगर जन्म ही लिया था तो लड़का क्यों न हुई ?

बहुत दिनों पर माता का प्यार पाकर लड़की चुपचाप नेत्रों से आँसुओं की धारा गिराने लगी। कुछ देर के लिए, जान पड़ता है, दोनों मा-बेटियों की ज़रा आँख लग गई थी। एकाएक मा के ठेलने से ज्ञानदा हड़बड़ाकर उठ बैठी। माता

ने कहा—अरे बिटिया, उठ, उठ; अब दिन बिलकुल नहीं रह भी गया। मेरे टीन के बक्स में, याद पड़ता है, एक साबुन का टुकड़ा पड़ा है। जा तो बेटी, चटपट तालाब से मुँह और हाथ-पैर धो आ। बस बिटिया, यही तो तुझमें बड़ा भारी दोष है, तू बात नहीं सुनती। जा जल्दी।

माता की आज्ञा के अनुसार ज्ञानदा ने टीन का बक्स खोलकर बहुत दिन का पुराना एक साबुन का टुकड़ा निकाला और अँगोछा लेकर मलिन मुख लिये तालाब की ओर प्रस्थान किया। मा कहने लगी—अच्छी तरह ख़ूब रगड़-रगड़कर हाथ-पैर और मुँह वग़ैरह धोना बिटिया। लापरवाही न करना। झटपट लौट आना। क्या जाने, किस घड़ी वे लोग आ जायँ।

तालाब से लौटकर ज्ञानदा ने जो देखा, उससे उसके अचरज की सीमा नहीं रही। मौत के मुँह में पैर लटकाये हुए माता इसी बीच मे न-जाने कब बिछौने से उठकर, न-जाने किस तरह अपने पिटारे के पास पहुँची और उसे खोलकर, उसके भीतर से अपनी एक पुरानी रङ्गीन छपी हुई धोती और सलूका निकालकर हाथ में लिये बैठी हुई बेटी के आने की राह देख रही थी। लड़की के आते ही उन्होंने कहा—बड़ी भूल हुई बेटी, पहले सिर के बाल नहीं बाँध दिये, तू हाथ-पैर धो आई। ख़ैर, होगा, बैठ जा। चटपट तेरा सिर बाँध दूँ।

लड़की ने कातर भाव प्रकट करके कहा—नहीं मा, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। यह काम तुमसे न हो सकेगा। तुम जाकर

हो। मैं आप अपने हाथ से बाँधे लेती हूँ। तुमको मेरी क़सम, मेरी बात मानो।

लड़की की बातें सुनकर आज माता ज़रा हँस पड़ी। सिर हिलाकर कहा—हूँ; मुझसे न हो सकेगा! यह तूने अच्छी कही। जानती है ज्ञानो, मेरे हाथों से बाल बँधवाने के लिए महल्ले भर की लड़कियाँ दौड़ी आती थीं, मुझे घेरे ही रहती थीं। मैं तेरे बाल न बाँध सकूँगी? ले, आ, बैठ जा, देर न कर।

ज़बर्दस्ती पास बिठाकर बड़े प्यार से, बड़े स्नेह से, बहुत जी लगाकर उन्होंने अपने हाथों बड़ी उस्तादी के साथ लड़की का सिर बाँधा, और शायद यही आख़िरी बार उसको सँवारा-सिंगारा। पैरों में महावर लगाया, ललाट में बिन्दी लगा दी। होंठों को लाल रँगना तक नहीं भूलीं। मुँह इधर-उधर घुमा-फिराकर एक बार चुम्बन कर चुकने के बाद मन में कहा—लोग कहते हैं, मेरी लड़की देखने में अच्छी नहीं है। हाँ, रङ्ग बेशक कुछ काला है। लेकिन ऐसा मुँह, ऐसी आँखें यहाँ आसपास किसकी लड़की की हैं?

केवल यही वे मन में न ला सकीं कि और किसकी लडकी अपनी मा को इतना चाहती है, और किस लड़की के प्राण माता में रक्खे रहते हैं? और किस लड़की के हृदय की इतनी बड़ी मातृभक्ति और माता के प्यार की उज्ज्वल दीप्ति इस तरह उसकी सारी बदसूरती को ढँककर बाहर चेहरे पर फूट उठती है? यह सब उन्होंने ज़रूर नहीं जान पाया, मगर पहले यह

सोचकर कि इस समय लड़की को पहनाने के लिए एक भी गहना पास नहीं है, उन्हें जो दुःख हुआ था वह न-जाने कब और किस तरह आप ही आप अज्ञात भाव से दूर हो गया। इस समय उनकी नज़र में गहनों की कमी ही बड़ी भारी कमी नहीं रही।

उस समय भी दिन कुछ बाक़ी था। किन्तु अब वे किसी तरह लेट रहने के लिए राज़ी न हुईं। सब दुःख-कष्ट भूलकर वे लड़की को सामने बिठाये बैठी ही रहीं।

ज्ञानदा को देखने लोग आवेंगे, यह सुनकर पास के घर से नीलकण्ठ की स्त्री आई। तरङ्गिणी, जो ननद लगती थीं, भी आ गईं। यथासमय लड़की के देखनेवाले आये। लड़की बाहर की बैठक में बुलाई गई। औरतें पास ही की कोठरी में जाकर दराज़ों से झाँकने लगीं।

आँखों की ओट में एकमात्र उपयुक्त सन्तान के शरीर में अत्यन्त कठिन स्थान पर नश्तर लगाये जाने के समय उसके वृद्ध पिता को जो बेचैनी होती है, जिस उलझन में उसका उतना समय बीतता है, वही बेचैनी और वैसी ही उलझन माता को उस समय थी। वे अपनी मलिन रोगशय्या पर अकेली बैठी अधीर उत्कण्ठा के साथ परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थीं।

वर और घटक (दलाल) महाराज ने जलपान वग़ैरह से निपटकर प्रस्थान किया। दुर्गा ने समझ लिया, वे लोग चले

गये। उन लोगों की किराये की गाड़ी घरघराती हुई चली गई, वह आवाज़ भी उन्होंने सुन ली। इसके बाद तरङ्गिणी दीदी ने उनकी कोठरी में आकर ख़ूब लम्बी-चौड़ी एक साँस छोड़कर यह सुसमाचार सुना दिया कि उन्हें लड़की नहीं पसन्द आई।

दुर्गा आँखें मूँदकर पड़ रहीं। उन्होंने फिर इस सम्बन्ध में एक भी प्रश्न नहीं किया। किन्तु इससे क्या होता है, दीदीरानी आप ही आप करुण स्वर में कहने लगीं—इसमें बहन, उनकी क्या लाग है? लड़की के शरीर भर में हाड़ ही हाड़ देख पड़ते हैं! ऐसी लड़की भला किसी को पसन्द आ सकती है? मँझली बहू, मेरा कहा मानो, ज्ञानो को कुछ दिन अच्छी तरह खिलाओ-पिलाओ, ज़रा आदमी की सूरत बने। हम सब तो इसे इसके लड़कपन से देख रहे हैं। लड़की की हालत क्या यही थी? बुख़ार के मारे बच्ची की हड्डी-पसली निकल आई हैं। साल भर सबर करके इसकी देखभाल और सँभाल करो, खिला-पिलाकर देह बनाओ, फिर देखो, लड़की क्या से क्या हो जाती है! यही लड़की लोगों की आँखों में लुभावनी लगने लगेगी।

यह तो ठीक है, लेकिन वह सुयोग कहाँ है? रुपये कहाँ हैं? एक साल ठहरकर उसकी हड्डी-पसली ढक देने का अवसर कहाँ है? लड़की चौदह वर्ष पूरे करके पन्द्रहवें में पदार्पण कर चुकी है! पुरखे दिन-दिन, जितनी देर होती है

उतना ही, नरक के गहरे अन्धकूप में गिरते जा रहे हैं। बड़े कुलीन घर की लड़की भी नहीं है। इसी से तो गाँव के मुखिया लोग जातिच्युत कर देने की धमकी देते हुए दिन-रात लाल-पीली आँखें दिखाते हैं! प्रतीक्षा करने की तो अब एक दिन की भी मोहलत नहीं—बस, बिदा करो, घर से निकाल दो, किसी के गले मढ़ो। चाहे जिस तरह हो, चाहे जिसके साथ हो—दूसरे ही दिन चाहे लड़की का विधवा हो जाना अनिवार्य जानकर भी—असह्य दुःख, दारिद्र्य का सामना जन्म भर के लिए आँखों से स्पष्ट देख पड़ने पर भी—किसी मरणोन्मुख वृद्ध पुरुष को ही बेटी सौंपकर जाति, धर्म की रक्षा करो, पुरखों को पतन से बचाओ! यही सलाह सुन पड़ती है!

उस समय भी शाम के चिराग़ नहीं जले थे। उसी अँधेरे में छिपकर ज्ञानदा अपनी लाञ्छित तिरस्कृत सजावट की सामग्री को उतार डालने के लिए चुपचाप भीतर आई। दुर्गा सोती न थीं, लेकिन मुर्दे की तरह पड़ी रहीं। दमभर बाद अभागिन लड़की बड़े भारी अपराधी की तरह चुपचाप आकर माता के पैरों के पास बैठ गई। माता ने जानकर भी साँस न ली। इसके उपरान्त उसी तरह चुपचाप बहुत देर तक अपेक्षा करके भूखी-प्यासी बीमार लड़की थकावट के बोझ से उसी जगह लेटकर सो गई। इन बातों का अनुभव करके भी आज माता के हृदय में लड़की के लिए रत्ती भर भी दया का सञ्चार न हुआ।

१०

दुर्गा की ऐसी दशा थी कि किस घड़ी क्या होगा, इसका कुछ ठीक नहीं। उस पर जब उन्होंने सब शास्त्रों का ज्ञान रखने-वाली पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ी औरतों से सुना कि उनकी सयानी काँरी कन्या केवल अपने पुरखों को ही दिन-दिन नरक में ढकेले नहीं लिये जा रही है, बल्कि उनके भी मरने के समय वह किसी काम न आवेगी, उसके हाथ का जल और आग, दोनों ही अपवित्र और अस्पृश्य हैं तब, इस शास्त्र को सुनकर परलोक की यात्रा के लिए पैर उठाये हुए दुर्गा का पीला चेहरा कुछ देर के लिए एकदम काग़ज़ की तरह सफ़ेद पड़ गया।

बहुत दिनों से लगातार, एक के ऊपर एक, चोट खाते-खाते दुर्गा का स्नेह का स्थान—हृदय—मानो एकदम सुन होता जा रहा था, सूखकर काठ-सा कठिन पड़ता जा रहा था। जिस लड़की के ऊपर उनकी ममता थी, उनके प्यार की कोई सीमा न थी, उसी लड़की को सामने देखते ही वे आजकल जल उठती थीं। आज की असफलता का समाचार सुनने के बाद से अपने परलोक बनने के मार्ग का कण्टक हो रही उस लड़की के विरुद्ध उनका समग्र हृदय एकदम कठिन पत्थर-सा हो गया था। उसमें ममता-मोह का लेश भी बाक़ी न रह गया था।

अनाथ बाबू को बुलवाकर उन्होंने कहा—भैया, सुनती हूँ, उस महल्ले के गोपाल भट्टाचार्य शायद फिर ब्याह करने-वाले हैं। मेरे मरने के पहले एक बार और आख़िरी कोशिश करके न देखोगे भैया ?

अनाथ को इस पर बिलकुल विश्वास नहीं हुआ। उसने इसी से बात को उड़ा देने के लिए कहा—ना, ना, गोपाल भट्टाचार्य अब क्या ब्याह करेंगे ? किसी ने तुमसे मसख़री की है भाभी !

दुर्गा ने साँस छोड़कर कहा—मुझसे भला ठट्ठा कौन करेगा भैया ? वे मर्द ठहरे। उनकी उमर का ख़याल कौन करेगा ? ना, ना, उनकी जितनी उमर है, उतनी उमर मे बहुत लोग ब्याह करते हैं भैया ! मै तुमसे विनती करती हूँ, ज़रा जाकर पता लगाओ तो। ज़िन्दगी में तो कुछ अच्छी करनी नहीं बन पड़ी, अब क्या मरने के बाद मुँह में ज़रा-सी आग भी न पाऊँगी ?

इस समय दुर्गा को सबसे बड़ी यही आशङ्का थी। उन्हे केवल यही जान पड़ता था कि इस लड़की को गर्भ में धारण करना, इतना दुःख उठाकर पालना-पोसना, यह सब क्या अन्त समय में एकदम निष्फल ही जायगा ? जिसके हाथ की आग पाने की आशा नहीं, वह लड़की पैदा ही क्यों हुई ?

घबराहट के मारे वे बिस्तरे पर तीन हिस्से उठकर बैठने के बाद कहने लगीं—भैया, चाहे जहाँ हो, चाहे जिसके साथ हो, चाहे जिस तरह हो, मेरा दम निकलने के पहले इस

लौंडिया का ब्याह कर डालो। मैं कहती हूँ, मरते समय के मेरे इस आशीर्वाद को लेकर तुम राजा हो जाओगे भैया!

इस बारे में भैया की अपनी ग़रज़ भी कुछ कम न थी। अनाथ उसी दिन गोपाल भट्टाचार्य की ख़बर लेने गया। ख़बर के सत्य होने की बात सुनकर वह दम भर के लिए सन्नाटे में आ गया। केवल यह सुनकर ही नहीं कि भट्टाचार्य ने इस बुढ़ापे में ब्याह रचाने की सोची है, बल्कि यह सुनकर कि इसी बीच में चार-पाँच लड़कीवाले बाप सिर से बोझ उतारने की टोह में भट्टाचार्य के दरवाज़े जाकर ख़ुशामद कर चुके हैं, वह दङ्ग हो गया!

इतने कष्ट का ब्याह था, तो भी जिसने सुना कि दुर्गा अपनी कन्या का ब्याह गोपाल भट्टाचार्य के साथ करनेवाली है, उसी ने बुरा कहा—उसी के मुँह से निकल पड़ा—छिः छिः! कैसे अनर्थ की बात है! किन्तु माता का मन इस निन्दा से भी नहीं विचलित हुआ। वे तो इस समय परलोक की यात्रा के लिए कमर बाँधे हुए हैं। उस यात्रा की पूँजी, शास्त्र की विधि के अनुसार, किसी तरह से, प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक है।

बङ्गाली की लड़की ठहरी। कितने ही जन्मों से इसी तरह शास्त्र की बलिवेदी पर जो कन्या-बलिदान करती आ रही है, वह आज इस काम से कैसे हिचक सकती है? दुःख के ऊपर दुःख यह हुआ कि गोपाल ने कहला भेजा—वह लड़की को पहले देख लेगा, फिर ब्याह करेगा! इस अभागे

देश की विशेषता यही है कि ऐसे मसान के मेहमान की सन्तान डोकरे को भी यह शौक़ करने का सुभीता सहज ही सुलभ है कि वह कई लड़कियाँ देख-सुनकर उनमें से चुनकर ब्याह करने का दावा करे !

गर्मी की ऋतु में सूखी हुई घास जैसे एक पानी का झीला पड़ते ही फिर से हरी हो उठती है, वैसे ही इतने से आशाजनक इशारे को पाकर दुर्गा की निर्जीव हो चुकी आशा पल भर में ही अंकुरित हो उठी। उन्होंने अपने देवर अनाथ का हाथ पकड़कर ख़ुशामद करते हुए कहा—भैया, तुमको मैं अपना छोटा भाई समझती हूँ। इतना सा छोटे भाई का काम तुम कर डालो, जिसमें इस अभागिन लौंडिया के हाथ की आग मरने पर मैं पा सकूँ। पञ्चमी की यही लगन ठीक है। यह न निकल जाने पावे। तुम कह आओ भैया, आज ही वे लोग लड़की देख लें।

ज्ञानदा ने जब यह सुना कि ब्याह हुए बिना माता का क्रिया-कर्म भी उसके हाथ से नहीं कराया जा सकेगा, शास्त्र में निषेध है, तो उसने नहाना और खाना छोड़ दिया। वह भी तो बङ्गाली की लड़की है। उसके भी हृदय में लगातार चिता की आग सी जलने लगी।

तीसरे पहर वह रसोईघर में अकेली बैठी माता के लिए पथ्य तैयार कर रही थी। इसी समय और एक बार रूप की परीक्षा देने के लिए उसका बुलौवा हुआ।

स्वर्ण ने ख़ुद दौड़ते हुए जाकर कहा—अरी ज्ञानो, यह बर्तन चूल्हे से उतार दे। जल्दी चल, जल्दी। लोग तुझे देखने को आ गये। खाली एक धोती पहन ले। वे लोग ऐसे ही, साधारण रूप में, देख लेंगे।

उसी तरह तेज़ी के साथ स्वर्ण चली गई।

अनाथ अभी आफ़िस से लौटा नहीं था। इस कारण अतिथियों के आदर और अभ्यर्थना का भार स्वर्ण के ही ऊपर था। लड़की को देखने के लिए ख़ुद वर आया था। दूर के नाते का एक भानजा भी उसके साथ था। जवानों की रुचि और नज़र धोखा नहीं खा सकती, यह सोचकर चतुराई के मारे बुढ़ऊ बाबा भानजे को लेते आये थे। उसी की यह सलाह थी कि लड़की साधारण पहनावे में ही बुलाई जाय। क्योंकि साज-सिंगार की ओट मे चालाकी चल सकती है।

भानजा छः बजे की गाड़ी से कलकत्ते जानेवाला था। वह जल्दी मचाने लगा। स्वर्ण आड़ में खड़ी होकर दबी आवाज़ मे ज्ञानदा को जल्दी आने की तंबीह करने लगी। किन्तु ज्ञानदा किसी तरह आती ही नहीं। केवल एक धोती पहनकर आने मे जितना समय लगता है, उससे कहीं अधिक देर लगते देखकर स्वर्ण की भेजी हुई दासी जाकर जब उसे खींच ले आई, तब उसके ऊपर नज़र डालते ही चाची स्वर्ण क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई, और चिल्ला उठी—उतार

डाल यह सब ! किसने तुझसे इस तरह सज-बजकर आने को कहा था ? जा, जल्दी उतारकर आ—

देखने के लिए आये हुए लोगों ने यह झल्लाना और चिल्लाना सुनकर आश्चर्य के मारे गरदन बढ़ाकर देखने की चेष्टा की। वर सब मामला समझ गया। उसने कहा—तो फिर यों ही ले आइए। मैं अब देर नहीं कर सकता।

दासी ने जब लड़की को लाकर सामने खड़ा किया, तब उसकी अद्‌भुत सजावट देखकर लड़के ने बड़ी मुशकिल से हँसी का वेग रोका। उसने खड़े होकर कहा—कल इस बारे में अपने निश्चय की ख़बर दूँगा। इतना कहकर युवक भानजा बूढ़े मामा को लेकर चल दिया।

जलपान कराने की तैयारी की रक्खी थी; किन्तु गाड़ी छूट जाने के डर से उस सामग्री को हाथ से छूने का भी उन्हें समय नहीं मिला।

कल ख़बर देने का मतलब स्पष्ट ही था। सबने समझ लिया। चाची ने चिल्लाकर, गालियों की गोलियाँ बरसा-कर, सारी बस्ती जैसे सिर पर उठा ली! मँझली बहू (दुर्गा) की हालत अच्छी न थी। अनर्थ की आशङ्का करके पड़ोस के घरों से दो-चार आदमी दौड़े आये। उसी अवसर पर अकस्मात् कहीं से अतुल भी आ गया। वह भी छः बजे की गाड़ी से कलकत्ते जा रहा था। रास्ते में चिल्लाहट सुनकर, ठीक वही आशङ्का करके, वह घर के भीतर घुस आया।

अतुल को देखकर स्वर्ण का क्रोध सौगुना और क्षोभ हज़ारगुना बढ़ गया। शीर्ण-शरीर, संकुचित हो रही, डर के मारे मुर्दा-सी बन रही, भाग्यहीन लड़की की गरदन ज़ोर से पकड़कर, अतुल के सामने उसका मुँह करके, स्वर्ण ने गरजकर कहा—देख अतुल, तनिक इधर तो देख ले। अभागिन, सरबभच्छी, बँदरिया ने मुँह की क्या शोभा बना डाली है, ज़रा तू भी देख ले।

सचमुच उसके चेहरे की ओर देखकर हँसी रोकना मुश्किल था। उसके होठों का रङ्ग गालों में और गालों का रङ्ग ठोड़ी में लग गया था। अपने हाथ से अँधेरे कोने में मत्थे पर बिन्दी लगाई थी, सो वह बीच में नहीं, किनारे हटकर लगी थी। रूखे बालों को शायद जल्दी में बाँधते समय उसने प्याली का सब तेल सिर पर औंधा लिया था, इसी से दोनों कनपटियों में तेल बह आया था।

दो-एक औरतें पास खड़ी थीं। वे देखकर खिलखिलाकर हँसने लगीं। एक की गोद में लड़का था। उसने तोतली आवाज़ में कहा—बुआ छवाँग बनी है। ऐछे जीभ नितालो बुआ।

अब उस लड़के ने जीभ निकालकर दिखाई। फिर दुबारा सब लोग हँस उठे।

"पाजी" कहकर उस लड़के की मा ने भी हँस दिया, किन्तु साथ ही दिखाने को लड़के के गाल में एक हल्का टहोका भी मार दिया।

किन्तु अतुल के हृदय को किसी ने मानो लोहे की गरम सलाक से छेद दिया। बहुत दिन हो गये, इस तरह दिन के दजियाले में, यों स्पष्ट रूप से, उसने ज्ञानदा के मुख की ओर दृष्टि नहीं डाली थी। सिर्फ़ दूसरे के मुँह से सुना था कि रोग के कारण उसका चेहरा बिगड़ गया है। किन्तु यहाँ तक चेहरा ख़राब होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। एक दिन जब वह ख़ुद भयङ्कर सान्निपातिक रोग के आक्रमण से मौत के मुँह में जानेवाला था, उस समय इसी मुख पर वह रीझ गया था—इसी चेहरे को उसने प्यार की नज़र से देखा था। वह आँखों का नशा न था, कृतज्ञता का उच्छ्वास या उबाल न था। उसने सच्चे दिल से, सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया था। आज जब अकस्मात् देख पड़ा कि उसी चेहरे के ऊपर यमराज अपनी डिगरी जारी करके आख़िरी नोटिस चिपका गये हैं, तब क्षण भर के लिए अतुल अपने को मानो भूल गया। वह कुछ कहना ही चाहता था, किन्तु स्वर्ण के ऊँचे स्वर में वह दब गया।

स्वर्ण ने कहा—ऐं, तूने तो खानगियों को भी मात कर दिया! एक मसान के मुर्दे को रिझाने के लिए यह स्वाँग बनाकर आई? मगर उसे रिझा भी सकी? मुँह में लात मारकर चला तो गया!

किसी ने पूछा—किसने इस तरह भूत बना दिया बड़ी बहू? जान पड़ता है, डोकरे ने पसन्द नहीं किया?

स्वर्ण ने उसकी ओर देखकर गरजकर कहा—आप ही यह सजावट की है—और कौन करेगा ? मा तो बेहोश पड़ी है। मैंने कह दिया कि सिर्फ़ एक धोती पहनकर चली आ। सो मन न भाया। सोचा, सज-धजकर न जाने से शायद बूढ़े को पसन्द न आवे। और, साज-सामान ही क्या था, यह एक छपी हुई धोती और अतुल की दी हुई दो चूड़ियाँ, बस ! सो ये चूड़ियाँ दिन में दस दफ़े उतारकर रखती है और दस बार पहनती है। कलमुँही को ये चूडियाँ पहनकर बाहर निकलते लाज भी नहीं लगती ! हट जा सामने से।

बेहया लड़की के इस निर्लज्ज चरित्र की समालोचना करके छिः-छिः करते हुए सभी आदमी वहाँ से चले गये। केवल उन्हीं अन्तर्यामी के, जिनसे कुछ छिपा नहीं रहता, नेत्रों से शायद एक-दो बूँद आँसू गिर पड़े। उन्हीं को केवल यह मालूम हुआ कि जो लड़की जन्मकाल से लेकर अब तक लज्जा के मारे कभी मुँह उठाकर किसी से कोई बात तक नहीं कर सकी, वही आज किस तरह सारी लज्जा को लात मारकर अपने उस स्वास्थ्य-श्री-हीन शरीर को अपने हाथ से इस प्रकार सजाकर एक महा वृद्ध के ही हाथों बेचने गई थी। किन्तु वह शरीर बिक नहीं सका, चालबाज़ी पकड़ ली गई। इसी से आज सभी पास-पड़ोस के आदमी छिः-छिः करके चले गये, किसी ने उसे क्षमा नहीं किया। किन्तु हृदय के भीतर बैठकर जो सब समय सभी आदमियों का विचार करते हैं,

उन्होंने शायद इस अभागिन बालिका के इस अपराध का भार अपने हाथों में ले लिया।

ज्ञानदा उठकर खड़ी हो गई। वह आज तक कभी किसी के सामने नहीं रोई। किन्तु आज अतुल के सामने उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। लेकिन उसने एक भी अभियोग की सफ़ाई नहीं दी, किसी की ओर आँख उठाकर नहीं देखा, चुपचाप आँखें पोंछती हुई चली गई।

कलकत्ते जाने के लिए उस दिन और कोई गाड़ी न थी, इस कारण शाम को अतुल अपने घर लौट गया। रास्ते में सब बातों के ऊपर छोटी मौसी की वह अन्तिम बात ही उसे बारम्बार याद पड़ने लगी। उस दिन बाप के घर जाते समय उन्होंने अतुल को बुलाकर कहा था—भैया अतुल, याद रक्खो, जो आदमी हीरा को छोड़कर काँच को आँचल में बाँधता है, उसे बेहद पछतावा होता है।

उस दिन इस बात के मर्म को वह अच्छी तरह समझ नहीं सका था। किन्तु आज उसे निःसंशय जान पड़ा कि उक्त वाक्य उसी को लक्ष्य करके कहा गया था। निर्लज्ज कहकर जिसे आज सभी ने लाञ्छित-तिरस्कृत किया, उसकी लज्जा की सीमा कहाँ और कितनी है, यह भी आज उसे स्मरण हो आया।

अभी अच्छी तरह प्रभात नहीं हुआ था, इतने में अनाथ अतुल को बुलाने आया। कहा—मँझली बहू चल बसीं, मरघट चलना होगा।

"चलिए" कहकर अतुल घर से चल दिया। जाकर देखा, डेढ़ साल पहले तुलसी-तरु के पास मृत पिता के दोनों पैर गोद में लेकर जैसे बैठी थी, वैसे ही आज भी चुपचाप माता के दोनों पैर गोद में रक्खे ज्ञानदा बैठी है। एक बार के सिवा जीवन में और कभी किसी ने उसे चञ्चल होते नहीं देखा था—वही, जब अतुल ही के पैरों पर झुककर उसने सिर पटका था। अतएव उसकी इस गहरी चुप्पी को देखकर किसी ने कुछ शङ्का नहीं की। उसकी ओर किसी की दृष्टि नहीं थी, पास-पड़ोस और महल्ले-टोले के लोग लाश ले जाने के ही उद्योग में लगे हुए थे।

यथासमय वे लोग लाश उठाकर मसान को ले चले। सबके पीछे ज्ञानदा भी गई। दुखिया की बेटी होने के कारण कोई और स्त्री उसके साथ नहीं गई। जाने का ख़याल भी किसी को नहीं आया।

बरसात की भरी गङ्गा ठीक मसान के नीचे ही बड़े वेग से बह रही थीं। माता का अन्तिम सत्कार—दाह—लड़की ने ही चुपचाप किया। चिता धायँ-धायँ जलने लगी। तब वह मर्दों की भीड़ से हटकर नीचे उतरकर एकदम जल के किनारे जा बैठी। किसी ने मना नहीं किया। मना करने की कोई बात भी न थी। बल्कि इस गहरे शोक के दृश्य को आँखों की ओट करने ही के लिए वह उतर गई है, यह अनुभव करके सब लोगों ने क्षणिक सहानुभूति के मारे "आहा!" कहकर एक साँस छोड़ी।

यह डर किसी को था ही नहीं कि यह सदा की शान्त, परम सहिष्णु लड़की एकाएक कुछ कर बैठेगी। अतुल को भी यह आशङ्का न थी। तथापि उसे प्रबल प्रवाह के बिलकुल पास जाकर बैठते देख अतुल का हृदय धड़क उठा। एक बार सोचा, मना करे; फिर सोचा, पास जाकर खड़ा हो; किन्तु लज्जा और झिझक के मारे कुछ भी न हो सका।

आग की आँच बचाकर सभी जहाँ जाकर बैठे थे वहीं अतुल भी जा बैठा। सामने जल रही चिता की ओर देखकर एकाएक उसके मन में वही चिरदिन का पुराना प्रश्न फिर नवीन रूप से उठ खड़ा हुआ—अर्थात् कल जो था, आज वह नहीं है; आज भी जो था, उसका भी यह नश्वर शरीर धीरे-धीरे भस्म हुआ जा रहा है। अब उसे पहचाना ही नहीं जाता, अथच उसी देह को आश्रय करके कितनी आशा, कितनी आकांक्षा, कितना डर और कितनी चिन्ता थी! वह कहाँ गया? पल भर में कहाँ ग़ायब हो गया? तो फिर उसका मूल्य क्या है? उसे मरते ही कितनी देर लगती है?

एकाएक उसका अपना ही विगत जीवन आँखों के आगे उपस्थित हो गया। लगभग तीन साल पहले उसके भी मरने में कुछ कसर नहीं रह गई थी किन्तु वह मरा नहीं। अज्ञात भाव से उसकी दृष्टि चिता के पीले-मैले धुएँ की लहरा रही यवनिका के उस पार चली गई। उसके मन ने कहा—

उस दिन जिसने मुझे मरने नहीं दिया, वह वही है—वह, जो गङ्गाजी के गँदले जल में अस्पष्ट परछाहीं डालकर साक्षात् शोक की मूर्ति की तरह बैठी है, जिसके रूखे केश और मलिन अञ्चल हवा में उड़ रहा है!

अतुल की आँखों में आँसू भर आये। उसने मन में कहा—रूप क्या है, कुछ भी नहीं। रूप का ही अगर इतना मूल्य है, तो तीन साल पहले रूप के बाज़ार में वह आप ही दिवाला निकाल बैठा था। उस दिन अपने बहुत ही सगे लोगों ने भी तो नफ़रत के मारे उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक न था।

वह समय किस तरह बीत रहा था, इसका होश उसे उस घड़ी बिलकुल हो न था। चिता कब बुझ गई, यह भी उसने नहीं देखा। उतनी देर तक बराबर उसकी नज़र केवल उसी निश्चल मूर्ति बनी बैठी ज्ञानदा के ऊपर लगी रही।

अनाथनाथ ने कहा—अब क्यों बैठे हो भैया? आओ, बाक़ी काम भी पूरा कर डालें।

"चलिए" कहकर अतुल उठ खड़ा हुआ। तीसरा पहर हो आया था। वह स्वप्न-सा देख रहा था—वह स्वप्न मानो उचट गया।

उस समय सूर्य का बिम्ब पश्चिम आकाश में नीचे की ओर ढल रहा था। उस मलिन प्रकाश से प्रकाशित घाट के ऊपर पड़ी हुई दो चूड़ियों के ऊपर नज़र पड़ते ही अतुल

सन्नाटे में आकर खड़ा हो गया। ये उसी की दी हुई बहुत ही साधारण चूड़ियाँ थीं, जिन्हें ज्ञानदा किसी समय बड़े क़ीमती ज़ेवर के बराबर समझती थी। सैकड़ों प्रकार की लाञ्छनाएँ और हज़ारों धिक्कार सहकर भी जिन चूड़ियों की ममता ज्ञानदा नहीं छोड़ सकी थी, उन्हें आज अपने ही हाथ से तोड़कर उसने उसकी कैफ़ियत मानो अतुल को दे दी। अतुल ने तेज़ी से आगे बढ़कर उन चूड़ियों को बड़े स्नेह और यत्न के साथ ज़मीन से उठा लिया। समूची रहने पर जिनकी कुछ भी क़दर उसने नहीं की वही तुच्छ काँच की चूड़ियाँ, आज टुकड़े-टुकड़े होकर भी, उसकी दृष्टि में एकदम अमोल हो उठीं।

पीछे पैरों की आहट पाकर ज्ञानदा ने घूमकर देखा। वह दृष्टि अतुल से सही नहीं गई। शायद एक बार उसका हाथ पकड़ने के लिए वह आगे बढ़ा भी, किन्तु वैसे ही सँभल गया। फिर कहा—भूल सभी से होती है ज्ञानदा, लेकिन—

इतना कहकर ही उसने अपनी मुट्ठी खोलकर दिखाई। सायङ्काल की लाली में और एक बार वे काँच के टुकड़े चमक उठे। अतुल ने उसी सिलसिले में कहा—आज तुम जिसे तोड़-कर फेक आई हो उसी को मैं फिर मसान से उठा लाया हूँ।

ज्ञानदा की समझ में कुछ न आया। इसी से उसने अपनी गहरे शोक के बोझ से शिथिल, उदास दृष्टि अतुल के

मुख पर डालकर आज बहुत दिनों के बाद फिर मुँह से बात निकाली। धीमे स्वर मे पूछा—क्यों ?

उत्तर देने की चेष्टा करते समय एकाएक अतुल की आँखों में आँसू भर आये। किन्तु उसने सँभलकर कहा—ज्ञानो, आज मँझली मौसी की चिता की आग में मैंने एक चीज़ स्पष्ट देख ली है, जो टूटनेवाली नहीं है, जिसे ज़बर्दस्ती किसी तरह तोड़ा नहीं जा सकता। ज़ोर करके काँच की चूड़ियाँ ही ताड़ी जा सकती हैं, लेकिन हम लोगों का वह देना और लेना आज भी उसी तरह अखण्ड है। उसे तोड़ डालने भर का ज़ोर न मुझमें है न तुममे है, न और किसी में है। मैं जो नहीं कर सका वह तुमसे भी नहीं किया जा सकेगा, यह मैं निश्चित रूप से जान गया हूँ, और इसी लिए टूटी हुई चूड़ियाँ उठा लाकर छाती से लगाये घर जा रहा हूँ।

ज्ञानदा बेहोश की तरह एकटक ताकती हुई जहाँ की तहाँ खड़ी रही। अतुल ने एकाएक अपने दोनों हाथ फैलाकर उसका शीर्ण-शिथिल दाहना हाथ अपने हाथों के बीच खींचकर ले लिया। किन्तु ज्ञानदा उसी प्रकार पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर खड़ी रही।

अतुल क्षण भर चुप रहकर आँसुओं से रुँधी हुई आवाज़ में कह उठा—मेरे पापों का भारी दण्ड और चाहे जो कोई मुझे दे ज्ञानदा, मगर तुम ऐसा करने की चेष्टा न करो। मैंने कितने ही अपराध क्यों न किये हों, किन्तु मुझे तुमको

वापस माँग लेना ही होगा। मुझे त्याग करके दण्ड देने की शक्ति तुममें किसी तरह नहीं हो सकती।

इतनी देर बाद ज्ञानदा ने सिर झुका लिया; किन्तु उसके मुँह से बोल किसी तरह नहीं फूटा। केवल उसका दुबला-पतला हाथ अतुल के हाथों के बीच एक बार काँप उठा। कई सेकिंड तक दोनों सन्नाटे में खड़े रहे। इसके बाद अतुल ने धीरे-धीरे ज्ञानदा का हाथ छोड़कर कहा—घर चलो, सब लोग आगे बढ़ गये।